यज्ञ गौरवम्

डॉ. कृष्णलाल

यज्ञगौरवम्

(पद्यात्मकम् हिन्दीभाषानुवादसहितम्)

(दिल्लीसंस्कृताकादमीवित्तसहयोगेन प्रकाशितम्)

यज्ञगौरवम्

(पद्यात्मकम् हिन्दीभाषानुवादसहितम्)

(दिल्लीसंस्कृताकादमीवित्तसहयोगेन प्रकाशितम्)

डॉ. कृष्णलालः

पूर्व आचार्य, संस्कृत विभाग,

दिल्ली विश्वविद्यालय,

दिल्ली-११०००७

जे. पी. पब्लिशिंग हाउस

दिल्ली-११०००७

रचयिता
डॉ. कृष्णलाल:
विश्वनीड—ई ९३७,
सरस्वती विहार, दिल्ली-३४
(दूरभाष संख्या-२७०२४६७३)

प्रकाशक :
जे.पी. पब्लिशिंग हाउस
२७/२८, शक्ति नगर, दिल्ली-७

प्रथम संस्करण : २००५

मूल्य : ८०.००

I.S.B.N : 81-86702-27-X

मुद्रक : तरुण ऑफसेट प्रिन्टर्स, मौजपुर, दिल्ली।
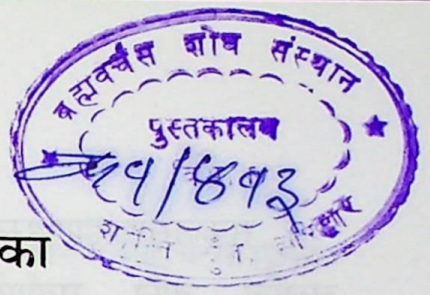
यज्ञगौरव-भूमिका

यजुर्वेदादिमन्त्रे 'देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे' इति वाक्यं श्रूयते। किं तत् श्रेष्ठेष्वप्यधिकं श्रेष्ठं कर्मेति जिज्ञासायां शतपथब्राह्मणोक्तिः ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' इति स्मर्तव्या।

सम्पूर्णवैदिकसाहित्ये यज्ञस्य प्रभूतं महत्त्वं प्रतिपादितम्। ऋग्वेदस्य प्रथममन्त्र एवाग्निः यज्ञस्य देवः ऋत्विगिति चोक्तः। स्पष्टमेव यदेतादृक्सामर्थ्यवान् अग्निर्भौतिको ऽग्निर्भवितुं नार्हति न हि तस्य यज्ञविवेकः सम्भाव्यते। एष तु परमेश्वरो यः सर्वान् अग्रे नयति। तस्य यज्ञः सर्वत्र सततं चलति, अत एवात्र चतुर्थे मन्त्र उच्यते यत्तस्य यज्ञस्य व्याप्तिः सर्वत्र–

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति।।

अत्रेमे अपि द्वे तत्त्वे अवधारणीये यत् प्रथमतस्तु यज्ञोऽध्वरो हिंसारहितो वास्ति, अपरतश्च स यज्ञो देवान् प्रतिदानादिगुणयुक्तान् वाय्वादीन् प्राकृतिकपदार्थान् प्रति गच्छति सर्वेभ्यश्च हितं साधयति। सृष्टेरारम्भो ऽपि पुरुषसूक्ते (ऋ.१०.९०) यज्ञादेव निर्दिष्टः। तत्र चादिपुरुषः स्रष्टा सृष्टियज्ञे सर्वमात्मतत्त्वं हुत्वा विविधानि तत्त्वानि सृष्टवान्, सर्वान् पशून् सर्वज्ञानरूपान् वेदांश्च–

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। (९)

तत्रैवोक्तं प्रथमसृष्टेर्धारकतत्त्वानि यज्ञमयानि बभूवुः, यथा–

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।। (तत्रैव १६)

सकलसृष्टेर्ब्रह्माण्डस्य केन्द्रभूतो यज्ञ एव। यान्यपि सृष्टिकार्याणि चलन्ति तानि सर्वाण्येव यज्ञमयानि। तथा चोक्तमथर्ववेदे (९.१०.१४)—

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।

अयमेव यज्ञो देवेन परमेश्वरेण सह सङ्गत्याः साधनरूपः। यज्ञद्वारा हि मनुष्यः परमेश्वरस्याभीष्टतमं परोपकाररूपं दिव्यं कर्म कुर्वन् तमेवाधिगच्छति। तथास्ति ऋग्वेदोक्तिः (१.१७७.४)—

अयं यज्ञो देवया अयं मियेधः।

यज्ञो मियेधः पवित्रः पवित्रकर्ता चास्ति। यज्ञ एव देवयाः देवान् वायुजलादिदेवान् प्रति गच्छति सर्वं च पर्यावरणं शोधयति, स एव परमदेवं परमेश्वरं प्रति यज्ञकर्तॄन् प्रापयति तस्य स्मरणेन तस्य ध्यानेन तद्गुणानुसारिकृत्यैश्च।

अस्मिन् विषये ऽधोलिखिता ब्राह्मणोक्तिरपि स्मरणीया—

"एवं वै देवयाः प्रभुर्नाम यज्ञः। यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते तत्र सर्वमेव प्रभूतं भवति।"

अस्यायमाशयो यद् यज्ञ एव प्रभुरीश्वरः सर्वं कर्तुं प्रभवति, यत्र हि लोका यजन्ते तत्र सर्वस्यान्नादेः समृद्धिर्भवति पर्यावरणशोधनात्। यदि वयं परमेश्वरं स्वानुकूलं कामयामहे तदास्माभिर्हविष्मद्भिः उत्तमोत्तमपदार्थैः घृतादिभिर्हविर्द्रव्ययुक्तैः यज्ञानुष्ठातृभिरीश्वरस्तुति-परैर्भाव्यम्। फलस्वरूपं परमेश्वरः प्रसन्नो भूत्वा ऽस्मान् कामयते, अस्मदर्थं च सर्वसुखं सामर्थ्यं सुरक्षां च कामयते। ईश्वरस्येयम् अनुकम्पा यज्ञेनैव लब्धुं शक्यते, यतः स स्वयं यज्ञमय एवास्ति,

लोकान् प्रति चासावस्माकं यज्ञभावनां परोपकारभावनां च वाञ्छति—

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे। उत त्वमस्मयुर्वसो।। (ऋ.३.४१.७)

शुक्लयजुर्वेदस्याष्टादशाध्याये यज्ञगुणाः सविस्तरं व्याख्याताः। तत्र ह्यादावेकोनत्रिंशति मन्त्रेषु यज्ञो मनुष्यस्य शारीरिकाणि तत्त्वान्यन्यानि च सर्वाणि तत्त्वानि समर्थयत्विति प्रार्थना श्रूयते। एकोनत्रिंशे मन्त्रे पुनः 'सकलमायुरेव यज्ञद्वारा शुद्धं भूत्वा सर्वाणि कर्माणि लोकाहितान्येव निष्पादयतु' इत्युक्तम्। अतो ऽप्यधिकम् एतदुक्तमत्र यद् यज्ञोऽपि यज्ञभावनया प्रेरित एव समर्थो भवतु, न तत्र स्वार्थो वान्यहानिर्वा प्रेरणा स्यात्। ''आयुर्यज्ञेन कल्पतां.....यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।''

यज्ञफलरूपेणैवात्र प्रार्थ्यते यद्वयं तेन विद्वांसो भूत्वा मोक्षसुखं प्राप्नुयाम जन्मरणदुःखरहिताः सन्तः भवेम—

''स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम''।

अग्रे पुनस्त्रिषष्टितमे मन्त्रे परमेश्वरः प्रार्थ्यते यदसौ ऋङ्मन्त्रोच्चारणेन ज्ञानेन वास्माकं यज्ञमग्निहोत्ररूपं सांसारिकसुखं विद्वत्सु वा प्राप्तुं प्रेरयतु—

''ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे''।

साररूपेण कथयितुं शक्यते—''ये मनुष्या धर्मेण प्राप्तैः द्रव्यैर्वेदरीत्या च साङ्गोपाङ्गं यज्ञं साध्नुवन्ति ते सर्वप्राण्युपकारिणो भवन्ति''।

यज्ञसम्बन्धे वेदोक्तैरेतैरुदात्तविचारैः प्रेरितेन मया 'यज्ञगौरवं'

नाम लघु पद्यबद्धं पुस्तकं प्रणीतम्। यद्यपि यज्ञसम्बन्धिन आधुनिका विज्ञानपरिपुष्टा विचारा अपि यथाशक्यमत्र विनिवेशितास्तथापि ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' इति मनस्यवधार्य कोऽपि विषयः पूर्ण इति वक्तुं न शक्यते। पुस्तकमेतद्यज्ञभावानुद्भावयिष्यतीत्याशासे। अत्रैतदप्यवधेयं यद् अथर्ववेदीये पृथ्वीसूक्ते प्रथममन्त्र एव यानि तत्त्वानि पृथिवीं तत्रस्थं सप्राणि सकलपदार्थजातं धारयन्ति परिपुष्णन्ति च तेष्वेको यज्ञोऽपि परिगणितः।

कृष्णलालः

यज्ञगौरव-भूमिका

यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ''तुम्हें सविता (सर्वप्रेरक ईश्वर) सबसे उत्तम कर्म के लिए प्रेरित करे'' यह वाक्य सुनने में आता है। वह सर्वोत्तम कार्य क्या है—ऐसी जानने की इच्छा होने पर शतपथ ब्राह्मण की यह उक्ति स्मरणीय है कि यज्ञ ही सर्वोत्तम कार्य है।

सारे वैदिक साहित्य में यज्ञ का बहुत महत्त्व बताया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही अग्नि को यज्ञ का देव और पुरोहित कहा गया है। यह स्पष्ट है कि इतना सामर्थ्यवान् भौतिक अग्नि नहीं हो सकता क्योंकि उसका यज्ञसम्बन्धी विवेक सम्भव नहीं है। यह (अग्नि) तो परमेश्वर है जो सबको आगे ले जाता है। उसका यज्ञ सर्वत्र निरन्तर चलता रहता है। इसीलिए इसी सूक्त के चौथे मन्त्र में कहा गया है कि उसका यज्ञ सर्वत्र व्याप्त है:—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वत: परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति।।

यहाँ इन दो बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए कि पहले तो यज्ञ अध्वर अथवा हिंसारहित है और दूसरे वह यज्ञ देवों अर्थात् दानादि गुणों से युक्त वायु जल आदि प्राकृतिक पदार्थों के पास जाता है और सबका कल्याण करता है।

पुरुषसूक्त (ऋ.१०.९०) में सृष्टि का आरम्भ भी यज्ञ से ही बताया गया है। तदनुसार आदि पुरुष स्रष्टा ने सृष्टियज्ञ में अपने सम्पूर्ण आत्मतत्त्व की आहुति देकर विविध तत्त्वों, सभी पशुओं और सर्वज्ञानरूप वेदों की सृष्टि की—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत: ऋच: सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।।

जिसमें सब कुछ की आहुति दी गई है, ऐसे यज्ञ से ऋग्वेद के मन्त्र, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद उत्पन्न हुए। वहीं यह भी कहा गया है कि प्रथम सृष्टि के धारक तत्त्व यज्ञात्मक थे (देवों ने यज्ञभावना से यज्ञ का अनुष्ठान किया। वे ही सृष्टि के प्रथम धारक तत्त्व थे)।

समस्त सृष्टि, ब्रह्माण्ड का केन्द्र यज्ञ ही है। सृष्टि के जो भी कार्य हो रहे हैं के सब यज्ञात्मक ही हैं। अथर्ववेद (९.१०.१४) में कहा गया है कि यह यज्ञ सारे संसार की नाभि (केन्द्र) है।

यह यज्ञ ही देव (परमेश्वर) के साथ सङ्गति का साधनरूप है क्योंकि यज्ञ के द्वारा मनुष्य परमेश्वर का सबसे अधिक प्रिय परोपकाररूप दिव्य कर्म करता हुआ उसको प्राप्त करता है। ऋग्वेद (१.१७७.४) में भी कहा गया है कि यह यज्ञ देव (परमेश्वर) के पास पहुँचाने वाला और मियेध अर्थात् पवित्र तथा पवित्र करने वाला है। यज्ञ देवया: है क्योंकि वह वायु, जल आदि देवों (देने वालों) के पास जाता है और सारे पर्यावरण को शुद्ध करता है। वह ही यज्ञ करने वालों को परमेश्वर के स्मरण, उसके ध्यान और उसके अनुसार कार्यों के द्वारा उसके पास पहुँचाता है।

इस विषय में ब्राह्मणग्रन्थों में उल्लिखित निम्नलिखित वाक्य स्मरण करने योग्य है:—

"इस प्रकार देव (परमेश्वर) के पास पहुँचाने वाला यज्ञ प्रभु है, समर्थ है। जहाँ इस यज्ञ के द्वारा यजन करते हैं, वहाँ सब कुछ अधिक (समर्थ) होता है।"

इसका यह अभिप्राय है कि यज्ञ ही प्रभु ईश्वर है, सबकुछ करने

में समर्थ है क्योंकि जहाँ लोग यज्ञ करते हैं, वहाँ पर्यावरणशुद्धि के कारण सब अन्न आदि की समृद्धि होती है।

यदि हम परमेश्वर को अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं अथवा उसकी कृपा चाहते हैं तो हमें हवि से अर्थात् घृत आदि उत्तम पदार्थों वाले आहुतिद्रव्य से युक्तिपूर्वक ईश्वर की (वेदमन्त्रों से) स्तुति करते हुए यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए। फलस्वरूप परमेश्वर प्रसन्न होकर हमारी कामना करता है, हमारे लिए सभी प्रकार के सुखों की, सामर्थ्य की और सुरक्षा की इच्छा करता है। ईश्वर की यह कृपा यज्ञ के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है क्योंकि वह स्वयं ही यज्ञमय है और सब लोगों के प्रति वह हमारी यज्ञभावना, परोपकार-भावना को चाहता है–

''हे परमेश्वर, आपकी कामना करते हुए हम यज्ञ में आहुतियों से युक्त होकर आपकी स्तुति करते हैं। हे सबको बसाने वाले प्रभु, आप भी हमारी कामना करने वाले हो जाइये।''(ऋग्वेद ३.४१.७)

शुक्लयजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में यज्ञ के गुणों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। वहाँ पर आरम्भिक उनतीस मन्त्रों में यह प्रार्थना है कि यज्ञ मनुष्य के सभी शारीरिक और अन्य सभी तत्त्वों को (बृहत् समाज तथा परमेश्वर को) समर्पित करे। इस क्रम में अन्तिम उनतीसवें मन्त्र में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा शुद्ध होकर सम्पूर्ण आयु (जीवन) ही मनुष्य सार्वजनिक कल्याण के कार्य ही करता रहे। इससे भी बढ़कर यहाँ यह कहा गया है कि यज्ञ भी यज्ञभावना (स्वार्थरहित परोपकार-भावना) से प्रेरित होकर ही समर्थ हो। वह स्वार्थ से ऊपर हो, किसी की हानि की अभिलाषा से प्रेरित न हो–

''आयुर्यज्ञेन कल्पताम्.....यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।''

यज्ञ के फल के रूप में ही यहाँ प्रार्थना की गई है कि हम

उससे विद्वान् होकर मोक्ष-सुख प्राप्त करें अर्थात् जन्म-मरण के दु:ख से रहित हो जाएं–

''स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम।''

आगे चलकर तिरेसठवें मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह ऋग्वेद के मन्त्र के उच्चारण से अथवा ज्ञान से हमारे अग्निहोत्ररूप यज्ञ को अथवा सांसारिक सुख (पर्यावरणशुद्धि) को विद्वानों में प्राप्त करने की प्रेरणा दे।

''ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे।''

साररूप में कहा जा सकता है कि जो मनुष्य धर्म अथवा उचित आचरण द्वारा प्राप्त वस्तुओं के द्वारा वैदिक रीति से सर्वाङ्गपूर्ण यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे सभी प्राणियों का उपकार करते हैं।

यज्ञ के सम्बन्ध में वेद के द्वारा कहे गए इन उदात्त विचारों से प्रेरित होकर मैंने ''यज्ञगौरवम्'' नामक पद्यबद्ध लघु पुस्तक का प्रणयन किया है। यद्यपि यज्ञ के विषय में आधुनिक, विज्ञान-परिपोषित विचारों का भी इसमें यथासम्भव समावेश किया गया है, फिर भी सत्य, ज्ञान और ब्रह्म अनन्त है–यह सोचकर किसी भी विषय को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। मुझे आशा है कि यह पुस्तक यज्ञ की भावना लोगों के मन में जगाएगी। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त (१२.१) के प्रथम मन्त्र में ही जो तत्त्व पृथ्वी को उस पर स्थित प्राणियों सहित सभी पदार्थों को धारण करते हैं और उनका पोषण करते हैं उनमें एक आवश्यक तत्त्व यज्ञ भी गिनाया गया है।

डॉ. कृष्ण लाल

यज्ञगौरवम्

अयं यज्ञो धात्रा सकलजगतः सृष्टिसमये
सुखार्थं लोकानां परमकृपया साधु विहितः।
जनाश्चेत् कल्याणं प्रतिदिवसमिच्छन्त्यविरतं
तदा यज्ञं श्रेष्ठं सततमनुतिष्ठन्तु सुधियः।।१।।

विधाता परमेश्वर ने अत्यन्त कृपापूर्वक ठीक विचार कर सारे संसार की सृष्टि के समय सब जनों के सुख के लिए इस यज्ञ का विधान किया। यदि लोग निरन्तर प्रतिदिन कल्याण के इच्छुक हैं तो वे बुद्धिमान् सदा श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करते रहें।।१।।

यज्ञः श्रेष्ठतमं कर्म
याज्ञवल्क्येन वर्णितम् ।
यज्ञश्च परमो धर्मो
वेदेषूपकल्पितः।।२।।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने (शतपथब्राह्मण में) यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म बताया है। वेदों में भी यज्ञ को परम धर्म (के रूप में) स्वीकार किया गया है।।२।।

यज्ञो भुवनकेन्द्रं वै
विश्वस्य नाभिरुच्यते।
यज्ञमयानि कर्माणि
लक्ष्यन्त इह सर्वतः।।३।।

यज्ञ सारी सृष्टि का केन्द्र ही है। उसे सारे संसार का नाभिस्थानीय (सबका मूलरूप मध्य) कहा जाता है। यहाँ सभी

ओर (प्रकृति में) कार्य यज्ञमय (दानादियुक्त, सबकी सहायतार्थ ही व्याप्त) दिखाई पड़ते हैं।।३।।

द्योतते दिवि यः सूर्य
आदौ धात्रा प्रकल्पितः।
स एव सर्वभूतानां
वृष्ट्या प्राणविधायकः।।४।।

जो सूर्य आकाश में चमकता है, जिसे विधाता परमेश्वर ने सबसे पहले बनाया, वह ही वर्षा के द्वारा सब प्राणियों में प्राणों का विधान करता है। (तु० सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्)।।४।।

प्राणिभ्यो ऽसौ पचत्यन्नं
वायुं प्रवाहयत्यपि।
मेघांश्च दिक्षु सर्वासु
हिनोति वृष्टिकारकान्।।५।।

वह सूर्य ही यज्ञरूप में, प्राणियों के लिए अनाज को पकाता है (और श्वास लेने के लिए) वायु को (एक स्थान से दूसरे स्थान पर) प्रवाहित करता है। वह सब दिशाओं में वृष्टि करने वाले मेघों को भेजता है।।५।।

वायुः पर्जन्यवृष्टिश्च
धरा सर्वोपकारिका।
नदीधाराश्च कूपाश्च
पुष्पफलानि वीरूधाम्।।६।।

वारिधौ भूमिगर्भे च
सर्वत्र रत्नसंचयः।
खनिजानि प्रभूतानि
सर्वं यज्ञेन सन्ततम्।।७।।

वायु और पर्जन्य (बादल) की वर्षा तथा सब का उपकार करने वाली धरती भी है, नदियों की धारायें और कुएँ, वृक्षों (पौधों) के फूल और फल, समुद्र और भूमि के भीतर सर्वत्र रत्नों का ढेर, बहुत से खनिज पदार्थ, यह सब कुछ यज्ञ(-भावना) से (परोपकार के उद्देश्य से सब के लिए) फैला हुआ है (सबके द्वारा प्राप्य है)।।६,७।।

ये केचित् पशवो ग्राम्या
गोमहिष्यादिकुक्कुराः।
दुग्धचर्मादिदानेन
सर्वे यज्ञविधायकाः।।८।।

जो कोई भी ग्राम्य या मनुष्यों के साथ रहने वाले गायें, भैंसें आदि (भेड़-बकरी) तथा कुत्ते (पालतू) पशु हैं, वे सब दूध चमड़ा आदि देने के कारण तथा कुत्ते रक्षा करके यज्ञ कर रहे हैं।।८।।

पयस्तक्रं घृतं मूत्रं
गोमयं पावनं तथा।
सर्वाण्यगदरूपाणि
गोस्तु मात्रा न विद्यते।।९।।

दूध, छाछ (दही), घी, मूत्र और इसी प्रकार पवित्र गोबर—ये सब औषधरूप (यज्ञसमान उपकारक हैं, इस प्रकार) गाय (के

गुणों) की सीमा नहीं है।।९।।

प्रभूतानि सस्यानि भूमिर्ददाति
जनास्तानि भुक्त्वा सुखं प्राप्नुवन्ति।
अयं भूमियज्ञोऽस्ति मातुः समानः
सुतान् पोषयित्वा सुखं मातुरन्त्यम्।।१०।।

भूमि बहुत अन्न देती है। उन (अनाजों) को खाकर लोग सुख प्राप्त करते हैं। भूमि का यह यज्ञ माता के समान है (क्योंकि) पुत्रों का पोषण करके (ही) माता को चरम (अन्तिम) सुख प्राप्त होता है। इस यज्ञ से बड़ा भूमि के लिए कोई और सुख नहीं है।।१०।।

अस्माकमृषयः पूर्वं
लोककल्याणहेतुना।
सृष्टिक्रमेण सङ्गत्या
शुभं यज्ञं वितेनिरे।।११।।

हमारे (सर्वहितकारी) ऋषियों ने प्राचीन काल में लोगों के कल्याण के उद्देश्य से सृष्टि (के यज्ञरूप) क्रम से संगति करते हुए (मेल बिठाते हुए) शुभ यज्ञ का विस्तार किया (जिससे सबका भला हो)।।११।।

ऋतुसन्धिषु ये यज्ञाः
ते रूपान्तरसंस्थिताः।
विजयादशमी-होली-
नाम्नोत्सवश्रियोऽधुना।।१२।।

लोके प्रचलिताः सन्ति
सुसङ्गतिकराः शुभाः।
जनयन्ति मिथः स्नेहम्
आनन्दं वर्धयन्ति च।।१३।।

ऋतुसन्धियां में (दो ऋतुओं के मिलने के समय) जो यज्ञ (किये जाते) थे वे दूसरे रूप में विद्यमान हैं। विजयादशमी (दशहरा), होली के नाम से अब उत्सवों के रूप में समाज में प्रचलित हैं। वे शुभ उत्सव मेल-मिलाप उत्पन्न करते हैं, परस्पर प्रेम बढ़ाते (पैदा करते) हैं। और आनन्द भी बढ़ाते हैं।।११-१२।।

मिथ्या परन्त्वद्य दहन्ति दुष्टं
दशाननं तं विपरीतकाले।
तथैव होलीमपि योजयन्ति
प्रह्लादगाथाप्रसङ्गेन मिथ्या।।१३।।

परन्तु आज वे (समान्य लोग) उलटे (अशुद्ध) समय में उस दुष्ट दशानन (रावण) का दहन करते हैं। (वास्तव में रामायण के अनुसार राम द्वारा रावण का वध फाल्गुन में किया गया था, आश्विन में नहीं।) इसी प्रकार वे होली को भी अशुद्ध रूप में प्रह्लाद की कथा के (हिरण्यकशिपु की बहिन के) प्रसंग से जोड़ देते हैं।।१३।।

अस्याशयो ऽयं यत् कालेन शक्त्या
दोषान् पराजित्य सुखं लभन्ते।
सूर्यो यथा वृष्टिदोषान् प्रहत्य
शैत्यं मयूखैः प्रददाति शान्तिम्।।१४।।

वास्तव में इसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार सूर्य वर्षा ऋतु के दोषों पर और अपनी किरणों से शीत पर प्रहार करके (सब लोगों को) सुख-शान्ति प्रदान करता है उसी प्रकार मनुष्य भी समय के अनुसार अपनी शक्ति के द्वारा सब दोषों और दुष्टों को पराजित करके अन्त में सुख प्राप्त करते हैं।।१४।।

नवान्नप्राशनार्थं तौ
सुयज्ञौ परिकीर्तितौ।
नवान्नभक्षणात् पूर्वं
दातव्यमिति भावना।।१५।।

वास्तव में (विजयादशमी और होली पर) वे दोनों सुयज्ञ नवान्न-प्राशन के लिए बताए गए हैं (विजयादशमी पर व्रीहि-धान की नई फसल आती है और होली पर जौ-गेहूँ की फसल तैयार होती है)। वास्तव में इन यज्ञों की मूल भावना यह है कि नया अन्न खाने से पहले (उसमें से कुछ अंश यज्ञ में आहुति के रूप में) देना (अर्पित करना) चाहिए।।१५।।

भारतसंस्कृतिश्रैष्ठ्यं
दानाचारो न विस्मृतः।
नवोत्कर्षे भवेद् यज्ञः
प्रभुर्येन महीयते।।१६।।

भारतीय संस्कृति की यह श्रेष्ठता है कि इसमें (कहीं भी) दान का आचरण भुलाया नहीं गया है। (नई फसल के रूप में) नई उन्नति में (भी) यज्ञ किया जाये जिससे परमेश्वर की पूजा होती है (क्योंकि वही सब कुछ देने वाला है)।।१६।।

यज्ञस्य महिमानन्तो
देवैरादावनुष्ठितः।
प्रकृतिशक्तयो नूनं
लोककल्याणहेतवः।।१७।।

यज्ञ की महिमा अनन्त है। (सृष्टि के) आरम्भ में देवों द्वारा

इसका अनुष्ठान किया गया था (तु.ऋ.१०.९०.१६—यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः)। प्रकृति की सभी शक्तियाँ निश्चित रूप से सारे संसार के कल्याण का कारण हैं (वायु, जल, सूर्य आदि के कार्यों से संसार के प्राणियों का भला होता है)।।१७।।

प्रकृतिशक्तयो देवा
ईश्वरप्रेरितैस्तु तैः।
नित्यं सञ्चाल्यते यज्ञः
सततं स्वीयकर्मभिः।।१८।।

देवता प्रकृति की शक्तियाँ हैं। परमेश्वर द्वारा प्रेरित होकर ही उनके द्वारा सदा अपने कार्यों के द्वारा निरन्तर (परोपकाररूप) यज्ञ चलाया जा रहा है।।१८।।

गच्छन्ति स्वर्गमीजाना
एतदाथर्वणं वचः।
न पुनरपरो लोको
वचसानेन सम्मतः।।१९।।

अथर्ववेद (१८.४.२) का यह वचन है कि यज्ञ करने वाले स्वर्ग को जाते (प्राप्त करते हैं) (ईजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्)। परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि इस वचन से कोई दूसरा लोक अभिप्रेत नहीं है, वस्तुतः स्वर्ग सुखमय स्थान, स्थिति का नाम है।।१९।।

स्वर्ग इहैव लोकोऽस्ति
विद्यातेजःसुखोदयः।
नरकश्च महादुःखो
रोगकष्टादिसंज्ञितः।।२०।।

स्वर्गलोक यहीं है जहाँ विद्या, तेज और सुख का (स्वच्छता आदि के द्वारा) उदय हो। (दूसरी ओर यहीं) महान् दुःख वाला, रोगों कष्टों आदि के द्वारा बताया गया ही नरक है।।२०।।

मा भून्नरकलोकोऽयं
न च मालिन्यमुद्भवेत्।
इति यज्ञः स्तुतो विज्ञैः
प्रदूषणनिवारकः।।२१।।

यह संसार नरक न बन जाए और (कहीं भी) मलिनता उत्पन्न न हो (जिससे रोगों का जन्म हो), इसलिए विद्वानों के द्वारा प्रदूषण को दूर करने वाले यज्ञ की स्तुति (प्रशंसा) की गई है।।२१।।

नास्ति हिंसामयो यज्ञः
पर्यावरणदूषकः।
यज्ञस्त्वध्वर इत्युक्तो
ध्येयं मन्त्रगतं वचः।।२२।।

हिंसा से युक्त नहीं है यज्ञ (क्योंकि हिंसायुक्त यज्ञ) पर्यावरण को दूषित करने वाला है। वेदमन्त्रों में विद्यमान उस वचन की ओर ध्यान देना चाहिए जहाँ यज्ञ को अध्वर (ध्वर-हिंसा से रहित) कहा गया है।।२२।।

यस्मिन् यज्ञे भवेद्धिंसा
कथं स शान्तिदायकः।
प्राणिनस्तत्र चीत्कारो
मनांस्येव प्रदूषयेत्।।२३।।

जिस यज्ञ में हिंसा हो, वह शान्तिदायक कैसे (हो सकता है)?

वहाँ तो (मारे जाने वाले) प्राणी की चिल्लाहट (केवल) मनों को दूषित करेगी अर्थात् घृणा या बीभत्सता के भाव जगा देगी।।२३।।

कैश्चित् स्वार्थपरैरज्ञै-
मिथ्या हिंसा प्रचारिता।
प्राणिमांसाहुतिं दत्त्वा
कल्याणं नैव सम्भवेत्।।२४।।

कुछ स्वार्थी अज्ञानियों ने (वेदमन्त्रों के मनमाने अर्थ लगाकर) झूठे हिंसा का प्रचार कर दिया। (आगे चलकर बौद्धों, जैनों द्वारा इसका प्रबल विरोध किया गया। निष्पक्ष दृष्टि से भी यह बुद्धिगम्य नहीं है।) प्राणियों के मांस की आहुति देकर कल्याण नहीं हो सकता।।२४।।

यजुर्वेदादिमे मन्त्रे
विज्ञैः सन्दृश्यतां स्वयम्।
यजमानपशूनां हि
रक्षार्थं प्रार्थ्यते प्रभुः।।२५।।

यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में स्वयं विद्वान् देखें क्योंकि वहाँ ईश्वर से यजमान के पशुओं की रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है (यजमानस्य पशून् पाहि)—अतः यज्ञ में हिंसा कल्पित है, तथ्यपरक नहीं)।।२५।।

मन्त्रेष्वपि पशूनां यै-
र्हिंसा संभाविता बुधैः।
निरुक्तं दृश्यतां पूर्वं
साध्वर्था यत्र दर्शिताः।।२६।।

जिन विद्वानों के द्वारा वेदमन्त्रों में भी पशुओं (प्राणियां) की हिंसा की संभावना (उद्भावना) बताई गई है, उन्हें पहले यास्कीय निरुक्त (अच्छी प्रकार) देखना चाहिए जहाँ महर्षि यास्क ने (निर्वचनों के द्वारा मन्त्रों और उनके शब्दों के) ठीक-ठीक अर्थ दिखाए हैं। वेद सामान्य पुस्तक नहीं है। उसे समझने के लिए निरुक्त-व्याकरण आदि का ज्ञान आवश्यक है।।२६।।

अमावास्यादिने दर्शः
पौर्णमास्यां तथापरः।
समनुष्ठीयतेऽन्नेन
नात्र मांसविपर्ययः।।२७।।

अमावास्या के दिन दर्श यज्ञ और पूर्णमासी में दूसरा (पूर्णमास) यज्ञ (इन दोनों यज्ञों का) अनुष्ठान अन्न (पुरोडाश, घी आदि) से किया जाता है। यहाँ मांस का विकल्प नहीं है।।२७।।

सदा दर्शयज्ञः क्रमात् पूर्णमासोऽ
प्यनुष्ठानयोग्यो जनैः सुप्रबुद्धैः।
ऋषीणां व्यवस्था पुराणी स्मृता नः
इयं संस्मृता संसृतेः सुव्यवस्था।।२८।।

जागरूक लोगों के द्वारा सदा दर्शयज्ञ और क्रमशः पूर्णमास यज्ञ का भी अनुष्ठान किये जाने योग्य है। ऐसी ऋषियों की पुरानी व्यवस्था का हमें स्मरण है। यह संसार की शोभन व्यवस्था भी है जिसके अनुसार पतन-उत्थान, घट-बढ़ होते रहते हैं। चन्द्रमा घटता है, फिर बढ़ता है। इन यज्ञों द्वारा हम दोनों अवस्थाओं के नियामक ईश्वर का स्मरण करते हैं और जीवन में सत्कर्म तथा सदाचरण की

प्रतिज्ञा करते हैं।।२८।।

अस्माभि: प्राणनि:श्वासै:
स्वेदमूत्रमलादिभि:।
अन्यैश्च बहुभि: कृत्यै:
सर्वं विश्वं प्रदूष्यते।।२९।।

हमारे द्वार प्राणनि:श्वास (गन्दा साँस छोड़ने) से, पसीने, मूत्र, मल आदि के द्वारा तथा और बहुत से कार्यों के द्वारा (यथा कारखानों का, हस्पतालों का कचरा, बिजली उपकरणों के प्रयोग से विषैली गैसों द्वारा) सारे संसार (के पर्यावरण) को दूषित किया जाता है।।२९।।

अस्माकमेव कर्त्तव्यं
प्रदूषणनिवारणम्।
अतो महत्यपेक्षाद्य
यज्ञस्य दिक्चतुष्टये।।३०।।

प्रदूषण को रोकना हमारा ही कर्तव्य है। (और उसका प्रमुख साधन यज्ञ द्वारा वातावरण की शुद्धि है।) इसलिये आज चारों दिशाओं में यज्ञ की बहुत आवश्यकता है।।३०।।

राजर्षिमुख्यैश्च विचारशीलै-
र्गृहस्थलोकैश्च सञ्चारशीलै:।
वने फलैश्चापि मूलैश्च तुष्टै-
राचर्यते स्मैव सदैष यज्ञ:।।३१।।

जनक आदि विचारशील मुख्य राजर्षियों के द्वारा, इधर-उधर

आने जाने वाले गृहस्थियों के द्वारा भी और वन में फल-मूल आदि के द्वारा सन्तुष्ट (अर्थात् उनके द्वारा जीवन-यापन करने वाले ऋषि-मुनियों)के द्वारा भी यह यज्ञ (पूर्व काल में) सदैव किया जाता था (और उससे प्राचीन काल में वातावरण शुद्ध रहता था)।।३१।।

अस्ति वेदस्य निर्देशो
भवेम यज्ञिया वयम्।
शुद्धाः पूताश्च दीर्घायुः
प्राप्नुयाम निरङ्कुशाः।।३२।।

वेद (ऋ.१०.१८.२) का निर्देश है कि हम यज्ञ करने वाले हों, और शुद्ध तथा पवित्र व्यवहार वाले होकर निरंकुश (निर्भय) होकर (सब प्रकार स्वस्थ और निश्चिन्त रहते हुए) हम दीर्घ आयु प्राप्त करें।।३२।।

सन्तोऽकुर्वन् शुभं यज्ञं
वेदवचननोदिताः।
वृष्ट्यन्नादिसमृद्ध्यै ते
सर्वेषां हितकाम्यया।।३३।।

वेद के वचन से प्रेरित होकर (प्राचीन भारत में) सज्जन शुभ यज्ञ किया करते थे। (उनका यज्ञ) वर्षा, अन्न आदि की समृद्धि के लिए था और उसमें सबके भले की कामना थी। (मनुस्मृति—३.७६ में लिखा भी है कि जो आहुति अग्नि में डाली जाती है उससे ही आगे चलकर वर्षा और अन्न होते हैं—अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः)।।३३।।

दुष्टैः परन्तु रक्षोभिः
खेदाय केवलं सताम्।
समुत्पाद्याखिला बाधा
यज्ञः स्म परिदूष्यते॥३४॥

परन्तु दुष्टों, राक्षसों के द्वारा केवल सज्जनों को खिन्न करने के लिए (कष्ट पहुँचाने के लिये) सभी प्रकार की बाधाएं उत्पन्न करके यज्ञ को दूषित किया जाता रहा॥३४॥

राजभी राजपुत्रैश्च
बाधाः प्रसह्य वारिताः।
यज्ञरक्षा हि कर्त्तव्या
तेषां धर्मः समीरितः॥३५॥

राजाओं और राजकुमारों ने बलपूर्वक (उन यज्ञों की) बाधाओं को दूर किया क्योंकि (धर्मशास्त्र में) उनका धर्म (कर्तव्य) बताया गया है कि उन्हें यज्ञ की रक्षा करनी चाहिए। (विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ ने राम-लक्ष्मण को भेजा था)॥३५॥

यज्ञ एव परं कर्म
पर्यावरणरक्षकः।
प्राणदः सर्वभूतानां
वनस्पत्यादिपोषकः॥३६॥

पर्यावरण (वायुमण्डल) का रक्षक, सब प्राणियों को (शुद्ध) प्राण देने वाला और औषधि-वनस्पति का पोषण करने वाला यज्ञ ही परम (आवश्यक) किया जाने योग्य कार्य है॥३६॥

वने तेने महायज्ञं
विश्वकल्याणहेतुकम्।
पवित्रैर्हवनद्रव्यै-
र्विश्वामित्रो महामुनिः।।३७।।

महर्षि विश्वामित्र ने पवित्र (गोघृतादि) आहुतिद्रव्यों से वन में (अपने आश्रम में) सारे संसार के कल्याण के कारण बने महान् यज्ञ का विस्तार किया।।३७।।

साहाय्येन स्वशिष्याणाम्
अन्येषां च तपस्विनाम्।
यज्ञमण्डप एवासीत्
यज्ञगन्धेन तद्वनम्।।३८।।

(महर्षि विश्वामित्र वह यज्ञ कर रहे थे) अपने शिष्यों तथा अन्य तपस्वियों की सहायता से। वह सम्पूर्ण वन ही यज्ञ से उठने वाली सुगन्ध के द्वारा यज्ञ के मण्डप (छोटा वितान या शामियाना जैसा) ही हो गया था।।३८।।

वृक्षेभ्यः पतिताः शुष्काः
आनयन् समिधः स्वयम्।
केचिद्वृक्षानहिंसन्तो
विचित्य ता इतस्ततः।।३९।।

कुछ (शिष्य) वृक्षों के प्रति हिंसा न करते हुए (अर्थात् बिना काटे) स्वयं सूखकर वृक्षों से गिरी हुई इधर उधर से ढूँढ कर इकट्ठी करके समिधाएं स्वयं ला रहे थे।।३९।।

अन्ये त्वचारयन् स्वैरं
दुग्धदोहाश्च गा वने।
केचिच्छिष्या गवामर्थे
यवसं चान्वकल्पयन्।।४०।।

दूसरे शिष्य जिन गौओं का (दूध) दोहन किया जा चुका है उन्हें वन में स्वेच्छा से चरा रहे थे और कुछ शिष्य गौओं के चर कर आने पर उनके लिए क्रमशः (कुण्डों में) खाने के लिए यवस (बाँट-चारा) तैयार कर रहे थे।।४०।।

समुदचारयन्नन्ये
वेदमन्त्रान् तपस्विनः।
सस्वरमवधानेन
प्रत्याहुति यथाक्रमम्।।४१।।

दूसरे तपस्वी (जो प्रौढ़ थे) ध्यानपूर्वक सावधान हो कर प्रत्येक आहुति के साथ कर्मानुसार (उपयुक्त) क्रम का पालन करते हुए उदात्तादि स्वरों के अनुसार (अपेक्षित) वेदमन्त्रों का मिल कर उच्चारण कर रहे थे।।४१।।

प्रससार शुभो गन्धो
यज्ञस्य निखिलं वनम्।
पक्षिणः पशवो हृष्टा
लक्ष्यन्ते पादपा लताः।।४२।।

यज्ञ की शुभ सुगन्ध सारे वन में फैल कर व्याप्त हो रही थी। (उससे सब) पशु-पक्षी और वृक्ष-लतायें (भी) प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं (थे)।।४२।।

तस्यां दिशि च गच्छद्भिः
पथिकैरन्वभूयत
सुगन्धो दिक्षु सर्वासु
येन चेतः प्रसीदति।।४३।।

उस (यज्ञस्थल की) दिशा में जाने वाले पथिकों के द्वारा सभी दिशाओं में (फैली हुई यज्ञ की) सुगन्ध अनुभव की जा रही थी जिससे मन प्रसन्न हो जाता है।।४३।।

न व्यरोचत रक्षोभ्यो
यज्ञोऽसौ धूतकल्मषः।
अतस्तेऽजनयन् विघ्नान्
बहुविधानहैतुकान्।।४४।।

(परन्तु) पापों (बुराइयों, प्रदूषण) को दूर करने वाला वह यज्ञ राक्षसों (दुर्जनों) को अच्छा नहीं लगा, इसलिए वे अकारण ही यज्ञ में बहुत प्रकार की बाधाएं उत्पन्न करते रहते थे।।४४।।

कदाचिदक्षिपन् वेद्यां
छद्मरूपा अलक्षिताः।
रुधिरं मांसखण्डानि
तत्त्वान्ययज्ञियानि च।।४५।।

कभी तो वे कपट रूप धारण करके या छिपे हुए यज्ञवेदी पर रक्त तथा मांस जैसी यज्ञविरोधी अपवित्र वस्तुओं को डालते रहते थे।।४५।।

स्वैरमानीय मद्यं वा
तद्बिन्दूनक्षिपंस्तथा।
अजनयन् महाघोरं
रावं मन्त्रविरोधकम्।।४६।।

(और कभी) उसी प्रकार अपनी इच्छा से शराब लाकर उसकी बूँदें वेदी में डाल देते थे (जिससे सुगन्ध बाधित होती थी और कभी, मन्त्रध्वनि में बाधक बहुत भयानक शोर उत्पन्न करते रहते थे।।४६।।

दुर्वृत्तपरमोद्योग:
सतां कार्येषु बाधनम्।
प्रसीदन्ति स्वकृत्यैस्ते
लाभस्तत्र भवेन्न वा।।४७।।

दुराचार और दुराचारियों का सबसे बड़ा कार्य सज्जनों के कार्यों में बाधा पहुँचाना है। चाहे उनके इस कार्य में (उन्हें या किसी को कोई) लाभ हो या न हो, वे (दुराचारी) अपने कार्यों से (अवश्य ही) प्रसन्न होते हैं।।४७।।

बहुधा बोधयित्वापि
रक्षसां शमने मुधा।
न शशाक यदा वाक्यै-
र्मधुरैश्च प्रलोभकै:।।४८।।

जब (महर्षि विश्वामित्र) व्यर्थ ही मधुर वचनों, प्रलोभन-जनक वचनों के द्वारा राक्षसों को बार बार समझाने पर भी उनको शान्त करने में समर्थ नहीं हुए,।।४८।।

निश्चितवान् महातेजा
विश्वामित्रो महामुनि:।
विवशो राजरक्षार्थम्
अयोध्यां प्रति चक्रमे।।४९।।

तां महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र ने विवश हो कर राजा की रक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया और वे अयोध्या की ओर चलने लगे।।४९।।

दुष्टा वाक्यैर्न शाम्यन्ति
कदापीति सुनिश्चितम्।
अतो नृपैर्महोत्साहै-
स्तेषु शस्त्रं प्रयुज्यते।।५०।।

(महर्षि के मन में था कि) दुष्ट कभी बातों से शान्त नहीं होते—यह बात अच्छी प्रकार निश्चित है। इसलिये महा उत्साही प्रजापालक राजाओं के द्वारा उन पर शस्त्रों (तथा अस्त्रों) का प्रयोग किया जाता है (जिससे वे दण्डित हो सकें)।।५०।।

नियुज्य स महानन्दं
यज्ञे ज्येष्ठं तपस्विनम्।
जगाम त्वरितैःपादै-
रयोध्यानगरीं शुभाम्।।५१।।

यज्ञ में ज्येष्ठ तपस्वी महानन्द को नियुक्त करके वह (महर्षि विश्वामित्र) शीघ्र कदमों (से चलकर) शुभ अयोध्या नगरी को गए।।५१।।

यज्ञैः पवित्रं मिलनं त्रिवेण्या
अतः प्रयागेति नाम प्रसिद्धम्।
गच्छन् महात्मा समवाप्य पुण्यां
भूमिं पुनस्तत्र निमज्य तोये।।५२।।

त्रिवेणी (गंगा, यमुना, सरस्वती—तीन नदियां) का मिलनस्थल (संगम) यज्ञों से पवित्र है, इसलिये इसका नाम प्रयाग—बहुत यज्ञों वाला, प्रसिद्ध हो गया। महात्मा (विश्वामित्र अयोध्या को) जाते हुए उस पवित्र भूमि पर पहुँचे। फिर वहाँ (संगम के) जल में उतर कर, ।।५२।।

स्नात्वाध्वखेदं परिहाय तत्र
निनीय रात्रिं पुनः प्रतस्थे।
ऋषिः स पुण्ये शुभे मुहूर्ते
कार्यं विना नैव भवेद् विरामः।।५३।।

स्नान करके, मार्ग की थकावट को दूर करके वहाँ रात बिता कर वह ऋषि (विश्वामित्र) फिर शुभ पवित्र (ब्राह्म) मुहूर्त में चल पड़े (क्योंकि) कार्य (पूर्ण हुए) बिना विराम (रुकना) नहीं हो सकता (कार्य-हेतु पहुँचने में अकारण विलम्ब हो जाता है, बाधाएं आ जाती हैं)।।५३।।

ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य
प्रभातं पथि गच्छतः।
सा हि स्वर्णमयी वेला
सुखस्पर्शा मनोहरा।।५४।।

मार्ग में चलते हुए ही उस धर्मात्मा ऋषि विश्वामित्र का दिन प्रकाशित हो गया। वह प्रभातवेला स्वर्णिम थी (क्योंकि सूर्य का स्वर्णिम प्रकाश फैल रहा था), उस समय (वायु और सूर्यकिरणों का) स्पर्श सुख पहुँचाने वाला था, जिस कारण वह समय मनोहर था।।५४।।

खगकलरवं शृण्वन्
पश्यन् तुहिनमौक्तिकम्।
तृणाग्रेषु स्थितं दिव्यं
प्रफुल्लोऽसावृषिर्ययौ।।५५।।

पक्षियों के (प्रातःकाल होने वाले) कलरव को सुनते हुए, घास की नोकों पर लगे हुए दिव्य (चमकने वाले) ओसरूपी मोतियों को देखते हुए ऋषि प्रसन्न होकर चल रहे थे।। ५५।।

यज्ञो बभूव सर्वत्र
ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे।
प्रासरद् यज्ञधूमश्च
मन्त्रध्वनिर्मनोरमः।।५६।।

सभी स्थानों पर गाँव गाँव और घर-घर में यज्ञ हो रहा था। (फलस्वरूप) यज्ञ का (पवित्र) धुँआ और वेदमन्त्रोच्चारण का (मोहक, पवित्र) मन को प्रसन्न करने वाला शब्द सब ओर फैल रहा था (और उससे वातावरण आकर्षक हो रहा था)।। ५६।।

किञ्चित्काले गते प्रापद्
अयोध्यानगरीं मुनिः।
चतुष्पथविभक्तां च
तोरणैः समलङ्कृताम्।। ५७।।

कुछ समय के पश्चात् मुनि विश्वामित्र चौराहों में विभाजित और (स्थान स्थान पर) तोरण-द्वारों से सुसज्जित अयोध्या नगरी में जा पहुँचे।। ५७।।

दशरथस्य हर्म्येऽसौ
राज्ञार्घेणाभिनन्दितः।
सेवकैः स्वयमानीतै-
रर्घ्यासनफलादिभिः।।५८।।

(फिर) दशरथ के महल में (पहुँचने पर) राजा ने सेवकों के द्वारा स्वयं लाए गए सम्मानार्थ (सुगन्धित) अर्घ्य जल, आसन, फल आदि (उच्चासन, पाँव रखने के लिये पीठिका, पाँव धोने का जल, आचमनीय जल, मुख धोने के लिए सुगन्धित जल, मधुपर्क—(दही, मधु, घी का मिश्रण) पदार्थों से महर्षि की अर्चना करके उनका अभिनन्दन किया।।५८।।

समभ्यर्च्य महात्मानं
त्यक्तासनः कृताञ्जलिः।
पप्रच्छ कुशलं पूर्वं
हेतुमागमने तदा।।५९।।

(महाराज दशरथ ने) महात्मा (विश्वामित्र) का (यथोचित विधि पूर्वक) आदर-सत्कार करके अपना आसन छोड़ कर हाथ जोड़कर पहले (उनसे) कुशल-समाचार पूछा, फिर (उनके) आने का कारण पूछा।।५९।।

अद्य प्राप्तो भवान् दिष्ट्या
सर्वाः प्रमुदिताः प्रजाः।
अपूर्वा मयि सञ्जाता
कृपाद्य भवतो मुने।।६०।।

आज भाग्य से आप पहुँचे हैं (जिससे) सारी प्रजाएँ बहुत प्रसन्न हैं। हे मुनि(वर), आज मुझ पर आपकी विशेष अपूर्व कृपा हुई है।।६०।।

उच्यतां भवत: काम:
कोऽस्त्यागमनहेतुक:।
पूरयिष्याम्यहं प्रीत्या
सौभाग्यं परमं मम ।।६१।।

आप कृपया अपनी वह इच्छा बताइये जिस कारण आप (इतनी दूर चलकर मेरे पास) आये हैं। मैं (अवश्य ही आपकी वह इच्छा) प्रेमपूर्वक (किसी दबाव के बिना) पूर्ण करूँगा। (आपका आना और मेरे द्वारा आपकी इच्छा की पूर्ति) मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है।।६१।।

सोऽब्रवीत् परमप्रीतो
धीरो दशरथं वच:।
अनुतिष्ठाम्यहं यज्ञं
सर्वलोकोपकारकम्।।६२।।
वृष्ट्यन्नदं सुखं पुण्यं
सर्वप्राणिशिवङ्करम्।
जनयन्ति परं विघ्नान्
राक्षसा बहुरूपिण:।।६३।।

(दशरथ के सम्मानजनक वचनों से) बहुत प्रसन्न हुए उस बुद्धिमान् (ऋषि विश्वामित्र) ने दशरथ को यह बात कही, ''मैं सभी लोगों का उपकार करने वाले तथा सभी प्राणियों का कल्याण करने वाले, वर्षा और (उसके माध्यम से) अनाज तथा सुख देने वाले पवित्र यज्ञ का अनुष्ठान कर रहा हूँ (अर्थात् मैं यज्ञ के द्वारा संसार का कल्याण करना चाहता हूँ) परन्तु बहुत रूप धारण करके राक्षस (दुष्ट) उसमें विघ्न-बाधाएं उत्पन्न करते रहते हैं।।६२,६३।।

स्मृतो ऽसि नस्त्वं जनकष्टरोधक:
सदा सतां चैव समृद्धिपोषक:।
त्वमर्थिलोकस्य सुखार्थतोषक:
समित्सु सर्वासु रिपोश्च शोषक:।।६४।।

हमारे द्वारा तुम जनता के कष्टों को रोकने वाले, सदा सज्ञनों की समृद्धि का पोषण करने वाले, अपेक्षी लोगों का सुख और धन से सन्तोष करने वाले तथा सभी युद्धों में शत्रु का शोषण करने वाले (के रूप में) स्मरण किये जाते हो।।६४।।

क्षत्रियस्य परं कार्यं
प्रजारक्षणमुच्यते।
दुष्टानां चैव संहार:
शान्तिसंस्थापनं तथा।।६५।।

क्षत्रिय का परम कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना, दुष्टों का नाश करना तथा (इस प्रकार समाज में) शान्ति की स्थापना करना बताया जाता है।।६५।।

अतो यज्ञस्य रक्षार्थं
याचेऽतुल्यपराक्रमम्।
ज्येष्ठं तव सुतं रामं
रक्षोयुद्धे हि स क्षम:।।६६।।

इस लिए यज्ञ की रक्षा के लिए मैं अद्वितीय वीरता वाले तुम्हारे सबसे बड़े पुत्र राम को मांग रहा हूँ क्योंकि राक्षसों के साथ युद्ध में वह समर्थ है।।६६।।

दशरथशिरसीवापातघोरा तडित्सा
विचलितमनसं चक्रे क्षणं तं च धीरम्।
क्षणमपि गतसंज्ञोऽभूत् स राजाधिराजः
पुनरपि नवसंज्ञां प्राप्य वाचं प्रतेने।।६७।।

(विश्वामित्र का वह वचन) मानो दशरथ के सिर पर गिरने वाली भयानक बिजली थी। उसने उस धैर्यवान् बुद्धिमान् (राजा दशरथ) को क्षण भर के लिए विचलित मन वाला कर दिया। एक क्षण के लिए वह राजाधिराज (भी) संज्ञाविहीन हो गया। फिर नई चेतना प्राप्त करके (दशरथ ने) कहना आरम्भ किया।।६७।।

भगवन् भवतः कार्यं
यज्ञो मे मूर्धनि स्थितः।
अल्पवयास्तु रामोऽयं
द्वैधीभवति मे मनः।।६८।।

हे भगवन् ऋषिवर, आपका यज्ञ(-सम्बन्धी) कार्य मेरे सिर पर स्थित है, अर्थात् मैं उसे प्रमुख, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य मानता हूँ। दूसरी ओर (मेरा ज्येष्ठ पुत्र) यह राम छोटी आयु का है। (इसलिये इसे आपको देने के विषय में) मन में दुविधा हो रही है।।६८।।

विश्वामित्र उवाचैनं
प्रतिज्ञाय न पालनम्।
घोरमिदं तु नैराश्यं
रघुवंशे न शोभते।।६९।।

विश्वामित्र ने उसे (दशरथ को) कहा–प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करना घोर (बहुत भयानक) निराशा की बात है। रघु के

वंश में (ऐसी बात) शोभा नहीं देती।।६९।।

अतो मया तु गन्तव्यं
भवद्राज्याद् यथागतम्।
यज्ञकार्ये हि रक्षांसि
विघ्नान् कुर्वन्त्वहर्निशम्।।७०।।

इसलिये जैसे मैं आया था उसी प्रकार (खाली हाथ) मुझे आपके राज्य से चला जाना चाहिए। क्योंकि (आपके होते हुए भी) राक्षस दिन-रात यज्ञ के कार्य में बाधा डालते रहें। (परिणाम यह होगा कि आप पर यज्ञरक्षा न करने का कलङ्क लगेगा)।। ७०।।

वसिष्ठो ऽसोढवान् सर्वं
गभीरं घटनाक्रमम्।
उवाचाथोभयप्रीत्या
बहुक्षेमकरं वचः।।७१।।

उस सारे घटनाक्रम को वसिष्ठ ने सहन नहीं किया। फिर विषय की गम्भीरता को देखते हुए उन्होंने विश्वामित्र और दशरथ दोनों के प्रति प्रेम के कारण बहुत शान्ति उत्पन्न करने वाले वचन कहे।।७१।।

वृथा बिभेषि राजंस्त्वं
पुत्रस्नेहेन दुर्बलः।
यज्ञरक्षा तु राज्ञो ऽस्ति
कर्त्तव्यं परमं प्रभो।।७२।।

हे राजन् तुम व्यर्थ ही भयभीत हो रहे हो। तुम पुत्र के प्रति स्नेह के कारण (इस समय मन से) दुर्बल हो गये हो। हे स्वामिन्,

यज्ञ की रक्षा तो राजा का श्रेष्ठ कर्त्तव्य (माना गया) है।।७२।।

वृद्धस्त्वमल्पवीर्योऽसि
देहि रामं सलक्ष्मणम्।
इष्टो रामसमुत्कर्षो
विश्वामित्रमहात्मनः।।७३।।

तुम वृद्ध हो गये हो। तुम्हारी शक्ति कम हो गई है। इसलिये लक्ष्मणसहित राम को दे दो। विश्वामित्र महात्मा (ने राम को इस यज्ञरक्षा के कार्य के लिये मांगा है क्योंकि वे) राम का उत्कर्ष (उन्नति) चाहते हैं।।७३।।

गोपायिष्यत्युभौ वीरौ
विश्वामित्रः स्वतेजसा।
जनयसि वृथा रोषं
महामुनेर्महामतेः।।७४।।

ऋषि विश्वामित्र अपने ही तेज से दोनों वीरों (भाइयों) की रक्षा करेंगे (अतः आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए) आप व्यर्थ ही अत्यन्त बुद्धिमान् महर्षि (विश्वामित्र) का क्रोध उत्पन्न कर रहे हैं।।७४।।

आजुहाव ततो राजा
वसिष्ठवचनेरितः।
रामं च लक्ष्मणं चैव
प्रेषितौ मुनिसंगतौ।।७५।।

तब राजा (दशरथ) ने वसिष्ठ के वचन से प्रेरित होकर राम

और लक्ष्मण (दोनों) को ही बुलाया और उन्हें ऋषि की संगति में (उनके साथ यज्ञ की रक्षा के लिए) भेज दिया।। ७५।।

सम्प्राप्य पुरसीमानं
रथं त्यक्त्वा पदातय:
चेलुरग्रे त्रयो हृष्टा:
पुनर्वसू शशी यथा।।७६।।

नगर की सीमा को प्राप्त करके रथ को छोड़कर आगें वे तीनों प्रसन्नतापूर्वक पैदल चलने लगे जैसे चन्द्रमा (और साथ रहने वाले) दो पुनर्वसु नामक नक्षत्र (साथ चल रहे हों)।। ७६।।

रामाय वीराय सलक्ष्मणाय
तपोधनो ऽसावमितप्रभावाम्।
मन्त्रात्मिकां तां ददौ सुविद्यां
यां प्राप्य जातौ तु रविप्रतापौ।।७७।।

लक्ष्मणसहित वीर राम को उस तपस्वी (विश्वामित्र) ने असीमित प्रभाव वाली मन्त्रात्मक उन्नत विद्या को, प्रदान किया जिसे प्राप्त करके (दोनों राजकुमार) सूर्य के समान प्रखर प्रताप वाले अति तेजस्वी हो गये।। ७७।।

बभूव सरयूतीरं
पादस्पर्शेन पावनम्।
उपदिदेश सन्ध्यायां
यत्र विद्यां महामना:।।७८।।

जहाँ महा मनस्वी विश्वामित्र ने सन्ध्या के समय (राम और

लक्ष्मण को) विद्या का उपदेश दिया, सरयू का वह तट (ऋषि के) चरणस्पर्श से पवित्र हो गया।। ७८।।

अथ निनीय तां रात्रिं
प्रयागे चलिताः समे।
ते तीर्त्वा संगमं प्राप्ता
भीषणं ताटकावनम्।।७९।।

इसके पश्चात् उस रात्रि को प्रयाग में बिताकर वे सब (प्रातः आगे) चले। संगम को पार करके वे भयानक ताटका (राक्षसी) के वन में जा पहुँचे।। ७९।।

सोच्चैर्जगर्ज धावन्ती
चकम्पे निखिलं वनम्।
उड्डीनाश्च खगाः सर्वे
प्रतिशब्दो भयानकः।।८०।।

भागती आती हुई ताटका जोर से ऊँचे स्वर में गरजी (दहाड़ी)। उससे सारा वन काँप उठा और सब पक्षी (घबराकर वृक्षों से) उड़ गए। उसकी दहाड़ की प्रतिध्वनि भयानक थी (जो देर तक गूँजती रही)।।८०।।

स तामापतन्तीं तु वेगेन दृष्ट्वा
मुनिः सावधानोऽब्रवीत् तं कुमारम्।
भवेः सज्ञधन्वा न कालो विनेयः
कुरु त्वं प्रहारं न चिन्तां कुरुष्व।।८१।।

उस ऋषि विश्वामित्र ने उस राक्षसी को वेग से आक्रमण करने

को आती हुई देखकर सावधान होकर राजकुमार (राम) को कहा, ''तुम धनुष तैयार कर लो (उसकी डोरी तान लो) क्योंकि समय को व्यर्थ नहीं गंवाना (जिससे कि उसे आक्रमण का अवसर ही न मिले)। तुम (तुरन्त उस पर) प्रहार करो। तुम चिन्ता न करो। (यह चिन्ता छोड़ो कि नियमानुसार स्त्री का वध करना चाहिए या नहीं। यज्ञ की रक्षा करना क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य है। उसके लिए स्त्रीवध की भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।)'' ॥ ८१॥

ऋषिणा प्रेरितो रामः
स्त्रीवधचिन्तया विना।
यज्ञबाधां प्रकुर्वन्तीं
तां निजघान ताटकाम्॥८२॥

महर्षि विश्वामित्र द्वारा प्रेरित होकर राम ने स्त्रीवध की चिन्ता किये बिना यज्ञ में बाधा डालने वाली उस ताटका का वध कर दिया॥८२॥

एवमेव हतौ दुष्टौ
रामेण यज्ञबाधकौ।
मारीचश्च सुबाहुश्च
निर्बाधश्च मखोऽभवत्॥८३॥

इसी प्रकार राम ने यज्ञ में बाधा पहुँचाने वाले मारीच और सुबाहु नामक दोनों दुष्टों (राक्षसों) का वध कर दिया। (इस प्रकार राक्षसों से रहित होकर महर्षि विश्वामित्र का) यज्ञ बिना बाधा के (सम्पन्न) हो गया॥८३॥

यज्ञो हि परमोत्कृष्टः
सर्वेभ्यः सुखकारकः।

सर्वशुद्धिप्रदाता च
तस्माद्रक्षन्ति नायका:।।८४।।

यज्ञ सबसे उत्कृष्ट (उत्तम कार्य) है। यह (रोगादि शान्ति के द्वारा) सबके लिये सुखकारक है। (वायु-पर्यावरण की शुद्धि के द्वारा) सबको शुद्धि प्रदान करने वाला है। इसलिये राष्ट्रनेता (या राजा) इसकी रक्षा करते हैं (यज्ञ की रक्षा उनका परम कर्तव्य है)।।८४।।

कृते युगे संहितामन्त्रगीतं
यज्ञस्य पूतस्य महत्त्वमेव।
त्रेतायुगे रामपराक्रमेण
यज्ञस्य रक्षा बहुधा कृताभूत्।।८५।।

कृतयुग (सत् युग) में पवित्र यज्ञ का महत्त्व संहिताओं के मन्त्रों में गाया गया। त्रेतायुग में राम के पराक्रम के द्वारा बहुत बार (आवश्यक समझकर) यज्ञ की रक्षा की गई।।८५।।

कृष्णेन चापि प्रमुखं प्रगीतम्
महत्त्वमेव प्रबोधात्मकं तत्।
प्रजापति: पूर्वमादौ स सृष्ट्यां
ददौ समृद्ध्यै यजनं जनेभ्य:।।८६।।

(द्वापर युग में) श्री कृष्ण ने भी मुख्य रूप से (यज्ञ का) प्रमुख रूप से ज्ञान प्रदान करने वाला महत्त्व गाया (गीता में बताया। वहाँ बताया गया है कि) उस विधाता प्रजापति ने आरम्भ में सृष्टि में पहले समृद्धि के लिये लोगों को यजन (यज्ञ का ज्ञान) दिया। (तु, गीता—३.१०)—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

इस विषय में गीता के इससे आगे के श्लोक भी द्रष्टव्य हैं)।।८६।।

स्वयं च भगवान् कृष्णो
बहून् यज्ञानकरोच्छुभान्।
अन्वतिष्ठन्महायज्ञान्
नियममनुपालयन्।।८७।।

स्वयं भी भगवान् कृष्ण ने बहुत से शुभ यज्ञ किए। नियम का पालन करते हुए उन्होंने (पञ्च) महायज्ञों (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, अतिथियज्ञ, पितृयज्ञ और बलिवैश्वदेव अर्थात् भूतबलि) का अनुष्ठान किया।।८७।।

यज्ञनिष्ठाप्रभावेण
राजसूयं समागतः।
कृष्णः सम्पूजितः सर्वैः
सर्वलोकनमस्कृतः।।८८।।

यज्ञ के प्रति निष्ठा (श्रद्धा-विश्वास) के प्रभाव से वे (युधिष्ठिर के) राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हुए। (उस समय) सबने श्री कृष्ण की पूजा-अर्चना की (क्योंकि ज्ञान में वही सबसे श्रेष्ठ थे) वही सब लोगों द्वारा प्रणाम के द्वारा सम्मानित थे।।८८।।

तस्यैतत्परमौदार्यं
विहायासौ स्वगौरवम्।
अभ्यागतजनानां हि
पादप्रक्षालने रतः।।८९।।

यह उनकी (कृष्ण जी) बहुत बड़ी उदारता थी कि वे अपने (किये गये) सम्मान और बड़प्पन को छोड़कर ही (सम्मान योग्य तथा पूज्य) आने वालों (विद्वानों-ब्राह्मणों ऋषि-मुनियों) के पाँव धोने के कार्य में (विनम्रता, प्रसन्नता पूर्वक) लगे हुए थे।।८९।।

महाजना महान्तः स्युः
स्वगुणैः कर्मभिस्तथा।
विद्यया च स्वभावेन
न धनेन पदेन वा।।९०।।

महापुरुष अपने गुणों और उसी प्रकार कार्यों से, विद्या और स्वभाव से ही महान् होते हैं। वे धन (की अधिकता) के कारण अथवा (ऊँचे) पद के कारण महान् नहीं होते।।९०।।

सर्वाणि कृष्णकार्याणि
यज्ञोद्दिष्टानि तान्यासन्।
स्वार्थपराणि दृष्टानि
श्रुतानि नाथवा पुनः।।९१।।

कृष्ण जी के सभी (महान्) कार्य यज्ञ के लिये उद्दिष्ट थे। न तो (महाभारत आदि ग्रन्थों में) स्वार्थपरक दिखाई देते हैं और न ही फिर स्वार्थपरक सुने जाते हैं।।९१।।

गोपालरोषादपि मोचनाय
राज्ञश्च वृद्धस्य विमोक्षणाय।
पित्रोर्विमुक्त्यायपि पापचारात्
दुष्टं स पापं निजघान कंसम्।।९२।।

उस (श्री कृष्ण) ने (राज्य को) ग्वालों के क्रोध से मुक्त करने के लिये और वृद्ध राजा (कंस के पिता उग्रसेन) को (कारागार से)

छुड़ाने के लिये और (अपने) माता-पिता (देवकी और वसुदेव) को (कंस के) पापपूर्ण आचरणों से मुक्त कराने के लिए दुष्ट पापी कंस का वध किया।।९२।।

सन्धिं विधातुं कुरुपाण्डवानां
दौत्यं स राजा कृतवान् महात्मा।
युद्धं भवेन्नापि जनस्य हत्या
क्षीणं बलं स्यान्न च राष्ट्रमध्ये।।९३।।

राष्ट्र में बल (शक्ति) कम न हो और युद्ध में लोगों की हत्या न हो (यह सोच कर श्री कृष्ण ने) उन्होंने राजा होते हुए भी (दुर्योधन को सन्धि के लिए मनाने के लिये स्वयं) दूत का कार्य किया। (उनका यह कार्य) कौरवों और पाण्डवों में सन्धि कराने के लिये था (जिससे कि युद्ध टल जाये)।।९३।।

यदपि कर्म कृष्णेन
कृतं तद्धि महत्प्रियम्।
यज्ञरूपं तदेवासीत्
यज्ञो बहुविधो मतः।।९४।।

श्री कृष्ण ने जो भी महान् सर्वप्रिय (सर्वोपकारक) कार्य किया, वह सब यज्ञरूपी था (क्योंकि उसमें महान् त्यागभावना निहित थी)। यज्ञ के अनेक प्रकार हैं, (अनेक रूप हैं) ऐसा माना गया है।।९४।।

महर्षिः पाणिनिः प्राह
यजधातोर्विभेदकान्।
त्रीनर्थान् व्यवहारे तु
प्रसिद्धान् तानुदारधीः ।।९५।।

उदात्त बुद्धि वाले महर्षि पाणिनि (लोकप्रयोग के आधार पर) व्यवहार में (आने वाले) यज् धातु के भिन्न भिन्न तीन प्रसिद्ध अर्थों को बताते हैं (जो उनके धातुपाठ में उल्लिखित हैं)।।९५।।

प्रथमो देवपूजास्ति
यज्ञाहुतिः प्रदीयते।
विदुषामपि सम्मानो
देवपूजैव कथ्यते।।९६।।

प्रथम (अर्थ) देवपूजा है (जिसमें देव या परमेश्वर के धन्यवाद-रूप अथवा सुचारु विश्व में जीवनदान के लिये उत्तम पदार्थों, घृत आदि की) यज्ञ (की अग्नि) में आहुति प्रदान की जाती है। विद्वानों का सम्मान भी देवपूजा ही कहा जाता है।।९६।।

मन्त्रोच्चारणमार्गेण
भवतीश्वरसंस्तुतिः।
प्रार्थनापि च तस्मै स्यात्
क्षीयते ध्वनिदूषणम्।।९७।।

(यज्ञ में किये जाने वाले वेद-)मन्त्रों के उच्चारण के द्वारा ईश्वर की स्तुति (प्रशंसा) होती है। और (उन्हीं मन्त्रों के द्वारा) उसकी प्रार्थना हो जाये। (साथ ही उनके शुद्ध उच्चारण से कर्कश तथा सर्वत्र व्याप्त) ध्वनिप्रदूषण भी कम होता है।।९७।।

सङ्गतिकरणं चैव
प्रसिद्धोऽर्थो द्वितीयकः।
यदा सत्सङ्गतिर्जाता
स यज्ञः शान्तिदायकः।।९८।।

इसी प्रकार द्वितीय (यज् का) प्रसिद्ध अर्थ (सज्जनों का) सङ्गतिकरण है। जब सज्जनों की सङ्गति होती है (सज्जन मिलकर बैठते हैं और उदात्त विचार-विमर्श करते हैं) तो वह यज्ञ शान्तिदायक होता है।।९८।।

सङ्गतिरौषधार्थानां
वस्तूनां हितकारिणी।
बहुवस्तुविनिर्माणं
भवेज्जनहितं तथा।।९९।।

औषध के लिए विभिन्न वस्तुओं (द्रव्यों, रसों, रसायनों, वनस्पतियों आदि का परस्पर) मिलाया जाना (रोगों आदि के लिए) हितसाधक है। (इसी प्रकार निर्माणियों, कारखानों तथा हस्तशिल्प के द्वारा बहुत वस्तुओं के मेल से) अनेक वस्तुओं का निर्माण जनहितसाधक होगा (वह भी यज्ञ है)।।९९।।

तृतीयश्च दानं महार्थः स्मृतोऽयं
धनस्यापि दानं तथैवान्नदानम्।
जनायास्तु विद्याविहीनाय विद्या
विनैव प्रतीकारभावेन दानम्।।१००।।

तृतीय यज् का महान् अर्थ दान समझा जाता है। (यह महान् है क्योंकि दान अनेक प्रकार का है।) धन का भी दान (होता है), उसी प्रकार अन्न (भोजन आदि) का दान (होता है), विद्यारहित (अनपढ़) व्यक्ति को विद्यादान (पढ़ाना बहुत बड़ा दान है)। बदले की भावना के बिना दान (किया जाना चाहिए) गीता में ऐसा दान सात्त्विक कहा गया है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।
(गीता.१७.२०) ।।१००।।

यज्ञस्य प्रमुखो भावः
त्यागः सर्वत्र दृश्यते।
प्रत्याहुति यतो वाक्यम्
इदं न मम कथ्यते।।१०१।।

यज्ञ की प्रमुख भावना त्याग (ही) यज्ञ में सर्वत्र (प्रत्येक क्रिया में) दिखाई देती है क्योंकि प्रत्येक आहुति (के अर्पण) के साथ यह वाक्य 'इदं न मम' (यह मेरा नहीं है) बोला जाता है।।१०१।।

एतेनैव समाजेऽपि
बालवृद्धेषु सम्भवेत्।
लोकार्थं त्यागसञ्चारो
जनताराष्ट्रधारकः।।१०२।।

इसके द्वारा ही समाज में भी बालकों से लेकर वृद्धों में भी जनता और राष्ट्र को धारण करने वाले अपेक्षी लोगों के लिये त्यागभाव का सञ्चार होना सम्भव है (अर्थात् आहुतियाँ त्याग सिखाती हैं, त्याग की प्रेरणा देती हैं)।।१०२।।

आ जन्मनः प्राणविच्छेदकाले
प्रत्येकसंस्कारविधौ तु यज्ञः।
पवित्रभावेन कर्त्तव्य एव
पुरातनीयं खलु संस्कृतिर्नः।।१०३।।

जन्म से लेकर प्राण अलग होने अर्थात् मृत्यु के समय तक जितने भी संस्कार किये जाते हैं उन सभी संस्कारों की पद्धति में पवित्रता की भावना से यज्ञ किया ही जाना चाहिये। यह हमारी (आर्यों, हिन्दुओं) की पुरानी संस्कृति (आज तक भी चली आ रही) है। (इसे ही वैदिक पद्धति भी कहा जाता है)।।१०३।।

गृहस्थेभ्यश्च नित्या ये
पञ्च यज्ञा प्रकीर्तिता:।
तै: सर्वप्राणिकल्याणं
समाजस्य चिकीर्षितम्।।१०४।।

गृहस्थों के लिये जो पाँच यज्ञ आवश्यक बताये गए हैं (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ,अतिथियज्ञ अथवा मनुष्ययज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ अथवा भूतबलि) उनके द्वारा सब प्राणियों के कल्याण की और सम्पूर्ण समाज के कल्याण की इच्छा की गई है।।१०४।।

लघवोऽपि महान्तस्ते
महायज्ञा इतीरिता:।
यतो जगत्प्रति त्याग
ऋषिभिरिष्यते सदा।।१०५।।

छोटे होते हुए भी ये पाँच यज्ञ बड़े हैं। इसलिये इन यज्ञों को महायज्ञ कहा गया है क्योंकि ऋषि-मुनियों को सम्पूर्ण संसार के प्रति ही त्याग की भावना सदा अभीष्ट होती है।।१०५।।

ब्रह्मयज्ञेन वेदानां
नित्यस्मरणमिष्यते।

वेदा हि ज्ञानकोशास्ते
सन्निधिं कुर्वते प्रभोः।।१०६।।

प्रथम ब्रह्मयज्ञ (मनु ने इसे ऋषियज्ञ कहा है) के द्वारा वेदों का प्रतिदिन आवश्यक रूप से स्मरण (स्वाध्याय) अभीष्ट है क्योंकि वेद (संस्कृति का आधार) ज्ञान का कोश हैं और वे ईश्वर से मनुष्य की निकटता स्थापित करते हैं (क्योंकि विविध देवनामों से ईश्वर की ही स्तुति की गई है)।।१०६।।

ग्रन्थेषु सर्वेषु तु वेदपाठः
स्वाध्यायशब्देन मतोऽस्ति नित्यः।
अयं तु नित्यः सुकृल्लोकमध्ये
भवेज्जने धर्मनिष्ठात्मनिष्ठा।।१०७।।

सभी धर्मग्रन्थों में स्वाध्याय शब्द से नित्य वेद का पढ़ना (आवृत्ति करना) माना गया है। सुकृत् (शुभ कार्य करने वाले) लोगों के बीच यह (वेदपाठ) नित्य (आवश्यक) है। (इससे एक तो) व्यक्ति में धर्म (कर्तव्य) के प्रति निष्ठा (दृढ़ विश्वास और उसके पालन के प्रति आसक्ति) होगी और अपने आप (अपनी संस्कृति) के प्रति भी निष्ठा होगी।।१०७।।

ब्रह्मयज्ञार्थमेवैषा
सन्ध्या निर्धारिता बुधैः।
दयानन्दर्षिनिर्दिष्टा
नित्यमाचर्यतां शुभा।।१०८।।

ब्रह्मयज्ञ (के अनुष्ठान) के लिये ही (पूर्वज) विद्वानों के द्वारा यह सन्ध्या (प्रातः सायम्) निश्चित की गई। महर्षि दयानन्द ने भी

(प्रतिदिन) इसे करने का निर्देश दिया है। इस शुभ सन्ध्या का नियमित आचरण करना चाहिये।।१०८।।

द्वितीयो देवयज्ञोऽस्ति
प्रत्यहमुत्तमं हविः।
घृतादिद्रव्यसंयुक्तं
देवेभ्यो ऽत्र समर्प्यते।।१०९।।

दूसरा देवयज्ञ है (इसमें अग्नि में) प्रतिदिन उत्तम (देशी) घी आदि (सुगन्धित स्वच्छ) पदार्थों से युक्त हवनयोग्य पदार्थों की आहुतियाँ इसमें देवों (विविध नामों से ईश्वर और प्राकृतिक तत्त्वों) को समर्पित की जाती हैं (जिससे दूर दूर तक वायु शुद्ध हो और सर्वत्र सुगन्ध फैले)।।१०९।।

देवा जीवनदातारो
जलवाय्वादयः श्रुताः।
पर्यावरणशोधेन
तच्छक्तिरनुवर्ध्यते।।११०।।

देव तो जल, वायु आदि जीवन दान देने वाले (प्राकृतिक तत्त्व) हैं ऐसा सुना जाता है (वेद में स्पष्ट होता है)। (यज्ञ के द्वारा) पर्यावरण की शुद्धि से उन (जल, वायु आदि तत्त्वों) की शक्ति को निरन्तर बढ़ाया जाता है।।११०।।

वृष्टिविरहिते देशे
वृष्टिर्यज्ञेन सम्भवा।
प्रयोगा बहवो विज्ञैः
कृता वृष्टिप्रदायिनः।।१११।।

वृष्टिरहित स्थान पर (जहाँ सूखा पड़ रहा हो वहाँ) यज्ञ के द्वारा वर्षा सम्भव है। ज्ञानियों (वैज्ञानिकों) के द्वारा (यज्ञ से) वृष्टि उत्पन्न करने के बहुत से (सफल) प्रयोग किये गए हैं (इससे यज्ञ द्वारा वृष्टि का होना सिद्ध होता है, इस विषय में समय समय पर समाचार आते रहते हैं)।।१११।।

बहूनां चापि रोगाणाम्
उपचारो ऽत्र दृश्यते।
विशेषहविषां योगे
यज्ञशुद्धेन वायुना।।११२।।

विशेष हविर्द्रव्यों (गुग्गुल आदि) के संयोग से यज्ञ के द्वारा शुद्ध किये गये वायु से यहाँ (यज्ञ में) बहुत से रोगों का भी उपचार होता है। (चिकित्सा होती हुई) देखी जाती है (इस प्रकार यज्ञ रोगों की चिकित्सा में भी सहायक हैं)।।११२।।

वृष्टिपुष्टेन चान्नेन
बलं यज्ञेन धीयते।
देवयज्ञो मनुष्याणां
सर्वथा हितकारकः।।११३।।

यज्ञ के द्वारा (होने वाली) वर्षा से वृद्धि को प्राप्त हुए अनाज से भी (शरीर में) बल का आधान होता है। (इसे ही वेद में इष्-वर्षा या अन्न और ऊर्ज्-बल या रस कहा गया है।) (इस प्रकार) देवयज्ञ मनुष्यों के लिये सब प्रकार से भला करने वाला है।।११३।।

अतोऽत्र सर्वैर्जनैर्ध्यानदृष्ट्या
यज्ञो यथाशक्त्यनुष्ठेय एव ।
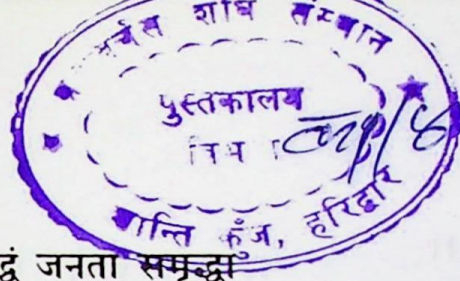
राष्ट्रं समृद्धं जनता समृद्धा
भवेत् सदा सौख्यपूर्णो विकासः।।११४।।

इसलिये यहाँ (इस संसार में) ध्यानपूर्वक सब लोगों के द्वारा यथाशक्ति (यथासम्भव) यज्ञ का अनुष्ठान किया ही जाना चाहिए। (इससे धनधान्य पूर्ण होकर) राष्ट्र समृद्ध होगा, जनता समृद्ध होगी और सदा सुखपूर्ण विकास होगा।।११४।।

यज्ञो महानन्ददाता वरेण्यः
सर्वस्य लोकस्य च रक्षकोऽसौ।
जलस्य वायोरपि शोधकोऽस्ति
श्वासैर्जलेनापि जीवन्ति सर्वे।।११५।।

यज्ञ वरणयोग्य है (क्योंकि वह) महान् आनन्द का देने वाला, सारे संसार का रक्षक (भी) वह है। वह जल का (सुवृष्टि द्वारा) और वायु का भी शुद्ध करने वाला है। सब (प्राणी) साँसों और जल से भी जीवित रहते हैं (इसलिए यज्ञ सबका जीवनदाता है)।।११५।।

पाता हि यज्ञः सुभिक्षप्रदाता
सर्वेषु च प्राणधाताऽस्ति यज्ञः।
सुखावहः सर्वजीवेभ्य एव
करोति शान्तिं न छलं कदाचित्।।११६।।

यह यज्ञ ही रक्षक है क्योंकि यह अनुकूल अन्न का देने वाला है। यज्ञ सब (प्राणियों) में प्राणों का आधान करने वाला है। यह सब ही जीवों के लिये सुख लाने वाला है। यह शान्ति (ही उत्पन्न) करता है, कभी भी (उसके विपरीत) छल-कपट नहीं करता

है।।११६।।

यज्ञोऽस्ति देवसम्मानः
सङ्गतिकरणं शुभम्।
पृथिव्यां पितरौ देवौ
पूर्वे पितामहादयः।।११७।।

यज्ञ देवों की पूजा तथा उनका सम्मान है और उनके साथ शुभ सङ्गति है। इस पृथ्वी पर माता-पिता (परम) देवता हैं। साथ ही पूर्वज दादा-दादी आदि (बड़े लोग भी) देवतुल्य हैं।।११७।।

तृतीयः पितृयज्ञोऽस्ति
यत्रैते सन्ति पूजिताः।
प्रणामैः रक्षणैः सम्यक्
यथेष्टभोजनादिभिः।।११८।।

तीसरा पितृयज्ञ है जहाँ इन (पूर्वोक्त देवों—माता-पिता, दादा-दादी आदि) का सम्मान किया जाता है। (इनका सम्मान) अच्छी प्रकार प्रणाम, रक्षा के द्वारा और उनकी इच्छा के अनुसार भोजन, वस्त्र आदि के द्वारा किया जाता है।।११८।।

स्वयं च सङ्गतिः कार्या
तैः सह मधु वार्ताभिः।
तैः साकं सहभोजोऽपि
स्याच्चेतसः प्रसादनेः ।।११९।।

और स्वयं मधुर बातों के द्वारा उनके साथ संगति करनी चाहिए (मिलना-बैठना चाहिए)। उनके साथ बैठकर भोजन भी मन की

प्रसन्नता में (के लिए) होना चाहिए।।११९।।

तदेव तर्पणं तेषां
शयनभोजनादिभिः।
यत्र क्वचिच्च यात्राभिः
तेषां चेतः प्रसीददति।।१२०।।

शय्या, भोजन आदि के द्वारा (किया गया) वही उनका तर्पण है (जिससे उनकी तृप्ति हो, सन्तोष हो)। (इसके अतिरिक्त) जहाँ कहीं (वे चाहें वहाँ) यात्राओं के द्वारा, जाने आने से उनका मन प्रसन्न होता है।।१२०।।

कामयन्ते ऽसमर्थास्ते
स्वल्पमेव समाश्रयम्।
महाशीर्दीयते तृप्तैः
सर्वसौख्यप्रदायिनी।।१२१।।

वे (वृद्ध माता-पिता आदि शरीर से) असमर्थ होने पर थोड़े से सहारे की कामना करते हैं। तृप्त-संतुष्ट होकर उनके द्वारा सबको सब प्रकार के सुख प्रदान करने वाला महान् आशीर्वाद दिया जाता है।।१२१।।

यज्ञो नाग्नौ हविर्द्रव्यै-
र्देवेभ्यस्तु प्रहूयते।
परोपकार एवापि
यज्ञोऽसौ परिकीर्तितः।।१२२।।

यज्ञ (केवल) अग्नि में आहुतिद्रव्यों के द्वारा देवों (किन्हीं

अदृश्य शक्तियों) के लिए आहुतियाँ अर्पित करके नहीं किया जाता। (अति व्यापक है यज्ञ) परोपकार (का कार्य) भी वह यज्ञ (ही) बताया गया है।।१२२।।

चतुर्थस्तु महायज्ञो
नृयज्ञः कथितो बुधैः।
अतिथियज्ञनाम्नापि
लोकेषु प्रथितो ह्ययम्।।१२३।।

चौथा महायज्ञ तो ज्ञानियों के द्वारा नृयज्ञ (या मनुष्ययज्ञ) कहा गया है। यह यज्ञ निश्चित रूप से लोगों में अतिथियज्ञ नाम से भी प्रसिद्ध है।।१२३।।

मान्योऽतिथिः सर्वगृहस्थलोकैः
प्रणम्य सत्कारपदार्थदानैः।
सदासनैर्भोज्यसुपेयशय्या-
सुखैर्जनैरर्घ्यजलेन नित्यम्।।१२४।।

घर के सब लोगों के द्वारा प्रणाम करके सत्कार की वस्तुएँ देकर (आदरपूर्वक उपहृत करके) यथा सुखपूर्ण अच्छा आसन (बैठने का उत्तम साधन), खाने और पीने का सुचारु पदार्थ, शय्या के सुख, (सुगन्धयुक्त) सम्मानार्थ जल के द्वारा सदा ही (घर के) लोगों के द्वारा (अतिथि का) सम्मान किया जाना चाहिये। (प्राचीन विधि में सम्मान के लिये मन्त्रोच्चारणपूर्वक छह वस्तुएँ अतिथि को उपहृत करने का विधान है—१. विष्टर-पवित्र आसन, २. पाँव रखने के लिए पटरे जैसा दूसरा आसन, ३. पाँव धोने के लिए पानी, ४. मुख धोने के लिये सुगन्धित अर्घ्य जल, ५. आचमनीय

(आचमन करने के लिए शुद्ध जल, और ६. मधुपर्क (दही, मधु और घृत का मिश्रण)। कुछ अंश में वह विधि आज भी विवाह संस्कार में कन्या पक्ष के द्वारा वर के सत्कार में दिखाई देती है)।।१२४।।

अतिथिश्च मतो देव:
पुण्येन महतागत:।
असौ चेदस्ति संन्यासी
गृहं ज्ञानेन पूयते।।१२५।।

अतिथि (गृहस्थ के) पुण्य कर्मों के कारण आता है, (इसलिए) उसे देव माना गया है (दे. तैत्तिरीय उपनिषद्-शिक्षावली)। यदि वह (अतिथि) संन्यासी हो तो घर ज्ञान से पवित्र हो जाता है (क्योंकि संन्यासी ज्ञान का भण्डार होता है और गृहस्थ जनों को विविध विषयों का ज्ञान बाँटता जाता है। परन्तु ढोंगी, नशा करने वाले साधु-संन्यासियों से बचना आवश्यक है)।।१२५।।

परन्तु छलिनो दुष्टा
गृहमभ्येत्य घातका:।
अतोऽद्य सावधाना: स्यु:
सर्वे दुष्टे युगे सदा।।१२६।।

परन्तु (बहुत से) कपटी और दुष्ट (हैं जो) घर में आकर घातक (और लूट पाट करने वाले भी होते हैं) इसलिए आज दूषित (कलि) युग में सब (गृहस्थों) को (ऐसे कपटी लोगों के प्रति) सावधान रहना चाहिए। (ऐसी घटनाएं नित्य ही समाचारपत्रों में छपती रहती हैं जिनमें महिला पानी लेने गई और इस बीच में

आगन्तुक ने चाकू, पिस्तौल निकाल कर महिला की हत्या कर दी और लूटपाट कर ली)।।१२६।।

वैश्वदेवबलिर्यज्ञो
महायज्ञेषु पञ्चमः।
प्राणिनां जीवनार्थं योऽ
नुष्ठातव्यो ऽनसूयया।।१२७।।

पञ्चमहायज्ञों में पाँचवा महायज्ञ वैश्वदेवबलि यज्ञ है जिसका अनुष्ठान ईर्ष्या के बिना (सब प्राणियों के प्रति समान भाव से) प्राणियों के जीवन के लिये किया जाना चाहिए।।१२७।।

भूतयज्ञो ऽथवायं तु
नामान्तरेण कथ्यते।
भूतबलिरिति प्रोक्तो
भूतानां हितकाम्यया।।१२८।।

या इसे सब भूतों (प्राणियों) की भलाई की कामना से भूतयज्ञ—इस दूसरे नाम से भी कहा जाता है और इसे भूतबलि भी कहा गया है (क्योंकि इसमें सब छोटे-बड़े प्राणियों को भोजन का अंश दिया जाता है)।।१२८।।

पिपीलिकाभ्य आरभ्य
बृहत्पशुभ्य आ तथा।
सुखिनः प्राणिनः सर्वे
जीवेयुर्मनुजाश्रिताः।।१२९।।

(भावना यह है कि) चींटियों से लेकर बड़े पशुओं तक भी सभी प्राणि-जन्तु मनुष्यों का आश्रय प्राप्त करके सुखपूर्वक जीवित

रहें (उनको मनुष्यों से भोजन मिलता रहे)।।१२९।।

अद्यापि भारतगृहेषु गृहिण्य एव
स्वैरं महानससुभोजनपाककाले।
गोरोटिकां नियमतः प्रपचन्त्यवश्यं
गोधूमचूर्णविकिरं निनयन्ति लोकाः।।१३०।।

आज भी भारत के घरों में गृहिणियाँ ही अपनी इच्छा से (बिना किसी दबाव के) रसोई का स्वादिष्ठ भोजन पकाते समय नियमपूर्वक (नित्य ही) गाय के लिए रोटी अवश्य निष्ठापूर्वक पकाती हैं (और वह रोटी गाय को श्रद्धापूर्वक खिलाई जाती है)। लोग आटा (और अन्य छोटे अनाजों) का बिखेरा (चीटियों के बिलों आदि पर) डालते हैं।।१३०।।

भोजनखादने काले
काककुक्कुरभुक्तये।
किंचित् किंचिद्विभज्यैव
खादन्त्यातृप्ति भोजनम्।।१३१।।

भोजन खाने के समय (लोग) कौआ, कुत्ता (आदि) के खाने के लिये कुछ कुछ भोजन का (स्वल्प) अंश निकाल कर तृप्त होकर (अपना) भोजन खाते हैं।।१३१।।

करोति जीवकल्याणं
तनोति प्राणिनो दयाम्।
पोषणं सर्वजन्तूनां
महाफलप्रदः क्रतुः।।१३२।।

(यह वैश्वदेवबलि) यज्ञ जीवों का कल्याण करता है। प्राणिमात्र के प्रति दया का विस्तार करता है। सब जीवधारियों का पोषक यह महान् फल देने वाला है।।१३२।।

भोजयामो यदा किञ्चित्
कस्मैचित् प्राणिने वयम्।
तेनेश्वरः सदा तुष्टो
ददाति तादृशं फलम्।।१३३।।

जब हम किसी प्राणी को कुछ खिलाते हैं तो उससे सन्तुष्ट होकर परमेश्वर वैसा ही (सुख-प्रापक) फल देता है।।१३३।।

अन्तकाले मृतो देहो
वह्नौ सन्दह्यते यदा।
अन्त्यः स प्रोच्यते यज्ञो
यज्ञे देहः समर्प्यते।।१३४।।

अन्त समय में जब मृत शरीर अग्नि में जला दिया जाता है तो वह अन्तिम यज्ञ (अन्त्येष्टि) कहा जाता है। (प्रभु द्वारा प्राप्त) शरीर को (भी) यज्ञ में (ही) समर्पित कर दिया जाता है।।१३४।।

यत्र वेदकथा सत्या
विना लोभं प्रवर्तते।
लोकोपकारदृष्ट्या सा
ज्ञानयज्ञस्तदोच्यते।।१३५।।

जहाँ वेद की सत्य कथा (वेद पर आधारित सत्य तत्त्व का प्रवचन) बिना लोभ के होता है। (जब वह प्रवचन) लोकोपकार

की दृष्टि से होता है तब उसे ज्ञानयज्ञ कहा जाता है।।१३५।।

शृण्वन्ति विषयान् लोका
विद्वद्भिः प्रतिपादितान्।
अन्धविश्वासहीनांस्तान्
ज्ञानयज्ञः स उच्यते।।१३६।।

(जहाँ) लोग अन्धविश्वासों से रहित विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित (युक्तिपूर्वक स्थापित किए गये विविध हितकारी) विषयों को सुनते हैं तो उसे ज्ञानयज्ञ कहा जाता है।।१३६।।

सामान्यजनबोधार्थं
सत्यभावाश्रिताः कथाः।
श्राव्यन्ते जनतामध्ये
ज्ञानयज्ञः स उच्यते।।१३७।।

(जब) जनसामान्य के ज्ञान के लिये सत्य बातों पर आश्रित (जादू-टोनों चमत्कारों से रहित) कथाएं जनता के बीच में सुनाई जाती हैं (तो उसे) ज्ञानयज्ञ कहा जाता है।।१३७।।

आख्यानानि न सर्वाणि
सन्ति सत्यानि मे प्रिय ।
बहुदृष्टान्तरूपाणि-
कल्पितान्यवधार्यताम्।।१३८।।

मेरे प्रिय, सभी आख्यान (जो कहानियाँ समझाने के लिये सुनाई जाती हैं वे) सत्य नहीं होते हैं। बहुत दृष्टान्तों (उदाहरणों) के रूप में वे कल्पित किये गए हैं—ऐसा तुम निश्चित समझो।।१३८।।

अन्यो ऽपि यज्ञो भुवि कर्मयज्ञः
समृद्धये लोकगणैर्मिलित्वा।
स्वयं हि निर्माणरूपः प्रसिद्धः
कुल्यादिमार्गादिषु दृश्यते यत्।।१३९।।

संसार में एक और भी यज्ञ है जो कर्मयज्ञ (अथवा श्रमयज्ञ, श्रमदान) है (जो) लोगों के समूह द्वारा मिलकर (सबकी) समृद्धि के लिए (किए गए) स्वयं निर्माण (कार्य) के रूप में प्रसिद्ध है, जो कि नहरों आदि, सड़कों आदि (के निर्माण) में (विशेष रूप से गाँवों में) दिखाई देता है।।१३९।।

लोकाः स्वयं लोककल्याणहेतोः
मिलन्ति कुर्वन्ति विहाय भेदान्।
कार्याणि सर्वाणि सुखाय जन्तो-
र्जलस्य लाभः सुगमश्च मार्गः।।१४०।।

लोग स्वयं ही लोगों के कल्याण (सुख-सुविधा) के लिए संगठित होते हैं और भेदभाव छोड़कर मनुष्य के सुख के लिये सब कार्य करते हैं (जिनसे) पानी की प्राप्ति हो और (आने जाने का) मार्ग सुगम हो जाए।।१४०।।

आसीत् स्वदेशस्य च मुक्तियज्ञो
विदेशिलोकैरभवच्च युद्धम्।
यत्र स्वलोकैः स्मितिपूर्वकं च
सोढानि कष्टानि हिताश्च जीवाः।।१४१।।

स्वदेश की (विदेशी शासकों से) मुक्ति का यज्ञ हुआ था (जहाँ) विदेशियों के साथ युद्ध हुआ था जिसमें अपने देशवासियों

ने मुस्कुराते हुए कष्ट सहे और अपने जीव (प्राण) त्याग दिये।।१४१।।

हविर्द्रव्याहुतीनां हि
त्यागः स्याद् यत्र पावके।
शुद्धघृतस्य सङ्गत्या
मन्त्रोच्चारणपूर्वकः ।।१४२।।

तदेव प्रथितं कर्म
पूर्वैर्यदृषिभिः कृतम्।
यज्ञो ऽध्वरो मखो होमो
हवनमुच्यते क्रतुः ।।१४३।।

जहाँ अग्नि में शुद्ध (देसी) घी के साथ (शुद्ध) हविर्द्रव्यों (आहुतियोग्य पदार्थों, मिश्रित सामग्री) की आहुतियाँ अर्पित की जाती हैं और उनके साथ साथ वेदमन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, पूर्व ऋषियों के द्वारा अनुष्ठित उस प्रसिद्ध कर्म को ही यज्ञ, अध्वर, मख, होम, हवन अथवा क्रतु कहा जाता है।।१४२-१४३।।

दयानन्दर्षिणा लुप्तः
पुनरुज्जीवितो विधिः।
नित्ययज्ञस्य देशेऽस्मिन्
सर्वेषां शुभचिन्तया।।१४४।।

सबकी शुभचिन्ता के कारण इस भारतदेश में नित्य (नियमित) यज्ञ की लुप्त पद्धति को महर्षि दयानन्द ने फिर से प्रचलित किया।।१४४।।

यज्ञो हि नामास्ति सदोपकारी
भुवश्च नित्यं परमं पवित्रम्।
श्रेष्ठं च कृत्यं खलु यज्ञ एव
सुखाय कार्य इह निष्ठया सः।।१४५।।

यज्ञ निश्चय ही सदा उपकारक है। यज्ञ पृथ्वी का सबसे अधिक पवित्र (तत्त्व, कर्म) है। यज्ञ ही श्रेष्ठ कार्य है। उसे (सबके) सुख के लिए निष्ठापूर्वक किया जाना चाहिए।।१४५।।

कर्तुं दैनिकयज्ञश्चेत्
केनचिन्नैव शक्यते।
विशिष्टावसरे प्राप्ते
कर्त्तव्यः पूर्णनिष्ठया।।१४६।।

यदि किसी के द्वारा दैनिक यज्ञ न किया जा सकता हो तो (आधुनिक जीवन की अनेक प्रकार की व्यस्तताओं में) विशेष अवसर आने पर यज्ञ पूर्ण निष्ठा के साथ किया (ही) जाना चाहिए।।१४६।।

शुभे जन्मदिने यज्ञः
कार्य आडम्बरं विना।
मनुष्यजन्मदानाय
मत्वा कृतज्ञतां प्रभोः।।१४७।।

मनुष्यजन्म देने के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता को मानकर आडम्बर (शान, दिखावे) के बिना (परिवार में ही) जन्मदिन के शुभ अवसर पर यज्ञ करना चाहिए।।१४७।।

किं मयात्र कृतं कर्म
शुभाशुभं च चिन्त्यताम्।
शुभमग्रे करिष्यामि
प्रतिजानातु मानव:।।१४८।।

(इस दिन) मनुष्य को सोचना चाहिए कि यहाँ (इस संसार में) क्या क्या अच्छे बुरे कार्य किए हैं। मनुष्य (यह भी) प्रतिज्ञा करे कि आगे जीवन में मैं अच्छा ही कार्य करूँगा।।१४८।।

जन्मदिनसमारोहो
बालानामुत्सवो महान्।
मान्य: सोऽपि तु यज्ञेन
नैव केकादिकं भवेत्।।१४९।।

जन्मदिन का आयोजन बच्चों का बहुत बड़ा उत्सव होता है। उसे भी यज्ञ के द्वारा मनाया जाना चाहिए। उसमें केक आदि (अंग्रेजी मिठाई) नहीं होना चाहिए। (पाश्चात्य पद्धति के अनुसार केक पर मोमबत्तियाँ जलाकर बुझाते हैं। भारत में हम प्रकाश बुझाना अशुभ मानते हैं)।।१४९।।

केकनिर्माणकाले हि
कुक्कुट्यण्डमपेक्ष्यते।
अतो भारतमिष्टान्नं
कान्दविकापणान्नयेत्।।१५०।।

क्योंकि केक बनाने के समय मुर्गी के अण्डे की आवश्यकता होती है (अण्डा तोड़कर केक के घोल में मिलाया जाता है और वह सामिष हो जाता है) इसलिए (पवित्रता की दृष्टि से शाकाहार को उचित मानते हुए व्यक्ति) हलवाई की दुकान से कोई भारतीय मिठाई (इस अवसर पर खाने-खिलाने के लिये) ले जाए।।१५०।।

विवाहदिनयज्ञे च
दम्पतीभ्यां शुभं शुभम्।
कुटुम्बाय च बालार्थं
शुभं कर्म समाचरेत्।।१५१।।

विवाह-दिवस आदि के यज्ञ पर दोनों पति-पत्नी के लिए शुभ ही शुभ होना चाहिए (सुख, समृद्धि,मधुर सम्बन्ध, दीर्घ आयु की कामना हो) परिवार के लिए, बालकों के लिए व्यक्ति को शुभ कार्य करने चाहिए।।१५१।।

उपकाराय यज्ञो ऽयम्
उपकाराय जीवनम्।
दम्पत्योः प्रेमभावः स्यात्
यज्ञेन सिच्यतां पुनः।।१५२।।

यह यज्ञ (सबके) उपकार के लिए होता है। जीवन (भी) उपकार के लिए (होता है) पति-पत्नी में प्रेमभावना बनी रहे। उसे यज्ञ द्वारा और अधिक सींचा जाए (बढ़ाया जाए)।।१५२।।

अनेकैर्नामभिर्यज्ञः
साम्प्रतं परिभाष्यते।
गायत्रीवाचनेनैव
गायत्रीयज्ञ उच्यते।।१५३।।

इस समय यज्ञ को अनेक नामों से जाना जाता है। गायत्रीमन्त्र (तत्सवितुः इत्यादि) का उच्चारण करके ही (जिस यज्ञ में हविर्द्रव्यों

घृत आदि की आहुतियाँ दी जाती हैं उसे) गायत्री-यज्ञ कहा जाता है। (यह लक्षगायत्री यज्ञ अथवा इससे अधिक गिनती वाला भी हो सकता है।)।।१५३।।

ऋक्पारायणयज्ञो वा
यजुरथर्वसामभिः।
क्रियन्ते बहवो यज्ञाः
लोकाकर्षणहेतवः।।१५४।।

लोगों के आकर्षण के लिये ऋग्वेदपारायण यज्ञ, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद पारायण यज्ञ (जिनमें उन उन वेदों के मन्त्रों का आद्योपान्त उच्चारण करके आहुतियाँ अर्पित की जाती हैं) नाम से बहुत से यज्ञ किये जाते हैं।।१५४।।

अन्येऽपि शान्तियज्ञो वा
यज्ञो विजयहेतुकः।
क्रियन्ते वा समृद्ध्यर्थं
रोगाणां शान्तये ऽथवा।।१५५।।

और भी बहुत से यज्ञ जैसे शान्तियज्ञ नाम से या विजययज्ञ (देश की सेना की शत्रु पर विजय के लिए) समृद्धि के लिए यज्ञ या रोगों की शान्ति के लिए यज्ञ किये जाते हैं।।१५५।।

कुण्डेष्वनेकेषु जनैर्मिलित्वा
क्रियेत यज्ञो युगपत् समृद्धः।
विभज्य कुण्डेषु तमाहुरेवं
संख्यानुकूलान् परिगणय्य कुण्डान्।।१५६।।

लोगों द्वारा मिलकर एक साथ अनेक कुण्डों में यदि समृद्ध (उत्तम हविर्द्रव्यों के द्वारा) यज्ञ किया जाए तो कुण्डों की संख्या की गिनती के अनुसार ही उसे संख्या के अनुसार ही कहते हैं (यथा इक्कीस कुण्डीय, इक्यावन-कुण्डीय, एक सौ एक कुण्डीय यज्ञ इत्यादि)।।१५६।।

ईश्वरस्त्वग्निरूपो ऽयं
देवः सर्वप्रकाशकः।
स नेता भुवनाधारो
यज्ञरूपो ऽयमुच्यते।।१५७।।

ईश्वर तो यह अग्निरूप सबको (ग्रहों, नक्षत्रों आदि को) प्रकाशित करने वाला दिव्य देव है। वह नेतृत्व करने वाला (अग्रणी-अग्नि) है। वह सारे संसार का आधार है। उसे यज्ञरूप कहा जाता है (यज्ञस्य देवमृत्विजम् ऋग्वेद १.१.१)।।१५७।।

पुरुषो यज्ञ एवोक्तः
सृष्टिरादौ यतो ऽभवत्।
स धाता परमः सृष्टिं
यथापूर्वमकल्पयत्।।१५८।।

(परम) पुरुष यज्ञ ही कहा गया है। (पुरुष के द्वारा किए गए) उस यज्ञ से ही आरम्भ में सृष्टि हुई (ऋ.१०.९०—पुरुष सूक्त)। उस परम विधाता (परम पुरुष) ने पहले (पिछले कल्पों) के समान सृष्टि को बनाया।।१५८।।

पवित्रो यज्ञशेषो ऽस्ति
भोगस्तस्य महाफलः।
उक्तमेतच्च गीतायां
भोगोऽस्य पापहारकः॥१५९॥

यज्ञशेष (यज्ञ में से आहुति के पश्चात् बचा हुआ अन्न) पवित्र होता है। उसके भोग का बहुत बड़ा फल है। गीता में कहा गया है कि यज्ञशेष का भोग पापों को नष्ट करने वाला है (यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः—३.१३)॥१५९॥

पूर्वं प्रदाय भोक्तव्यम्
अतो ऽस्य गरिमा स्तुतः।
कुटुम्बाय प्रदायान्नं
भुङ्क्ते सद्गृहिणी तदा॥१६०॥

पहले (भोजनादि) देकर भोग करना चाहिए, इसलिए यज्ञशेष की गरिमा की स्तुति की गई है। अच्छी गृहिणी (पहले) परिवार को भोजन देकर (खिलाकर) तब स्वयम् (भोजन) खाती है॥१६०॥

संस्कृतिर्नः पुराणीयं
सर्वस्य हितकारिणी।
त्यागमूलो हि यज्ञो ऽयं
तस्माद्यज्ञं समाचरेत्॥१६१॥

सबका भला करने वाली यह हमारी पुरानी संस्कृति है। इस यज्ञ के आधार में भी क्योंकि त्याग है, इसलिए मनुष्य को यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।।१६१।।

त्यागश्च दानं परमे पवित्रे
मनुष्यलोकस्य संजीवने ते।
यज्ञेन लोका इममेव भावं
शिक्षन्त एवात्र विना प्रपञ्चम्।।१६२।।

त्याग और दान बहुत पवित्र भावनाएं हैं। वे दोनों भावनाएं मनुष्य लोक के संजीवक हैं। यज्ञ के द्वारा मनुष्य इसी भावना को विस्तृत फैलाव , प्रयत्न, प्रपञ्च के बिना सहज ही सीख जाते हैं।।१६२।।

प्रसरतु जनमध्ये यज्ञभाव: पवित्र:
सुरभिवनमिव स्यात् सौम्यभावो जगत्याम्।
सकलजगति दोषाणां क्षय: स्याद्विकासो
जनजनहृदये स्यात् त्यागभावो विशाल:।।१६३।।

यज्ञ की पवित्र भावना का लोगों के बीच प्रसार हो। सारे संसार में उसी प्रकार सुख-शान्ति का विस्तार हो जैसे सुगन्धित वन में होता है। सारे संसार में (पर्यावरण और वैमनस्य आदि के) दोष नष्ट हों (और सर्वत्र सुखसमृद्धि का) विकास हो। प्रत्येक व्यक्ति के

हृदय में विशाल (व्यापक) त्याग की भावना हो।।१६३।।

हृदयगतविचारेणास्मि सम्प्रेरितो ऽहं
सपदि रचितवान् पद्यानि गृह्णन्तु लोकाः।
यदि च जगति कश्चिद्यज्ञभावानुगः स्यात्
सफलमिह सुयत्नं मंस्य आत्मानमेव।।१६४।।

हृदयस्थित यज्ञ की भावना से प्रेरित होकर मैंने तत्काल इन पद्यों की रचना की है, लोग इन्हें स्वीकार करें। यदि संसार में कोई एक व्यक्ति भी (इनसे) यज्ञभावना का अनुगामी हो जाए तो मैं अपने आप को ही सफल और अच्छा प्रयत्न करने वाला मानूँगा।।१६४।।

यज्ञगौरवपद्यानां
लक्ष्यं यज्ञप्रचारणम्।
सर्वलोकोपकाराय
पर्यावरणशुद्धये।।१६५।।

''यज्ञगौरव'' के पद्यों का लक्ष्य सब लोगों के उपकार के लिए और पर्यावरण की शुद्धता के लिये यज्ञ का प्रचार करना है।।१६५।।

कृष्णलालप्रयासो ऽयं
केवलं लोकशान्तये।
दृष्ट्वा यज्ञप्रभावं च
प्रेरितो गुणकीर्तने।।१६६।।

यज्ञ के प्रभाव को देखकर उसके गुणों का वर्णन करने को

प्रेरित हुए कृष्णलाल का यह प्रयत्न केवल लोकशान्ति के लिए है।।१६६।।

किशोरीलालपुत्रेण

कृष्णलालेन धीमता।

यज्ञगौरवनामैतद्

रचितं लघु पुस्तकम्।।१६७।।

श्री किशोरी लाल के विद्यावान् पुत्र कृष्ण लाल के द्वारा ''यज्ञगौरवम्'' नामक यह छोटी पुस्तक प्रणीत हुई।।१६७।।

इति श्रीकिशोरीलालसीतादेव्यात्मजेन दिल्लीवास्तव्येन प्रणीतं ''यज्ञगौरवम्'' नाम लघु पुस्तकं सम्पूर्णम्।